।। श्रीगणेशाय नमः।।

अथाऽयोध्यामाहात्म्यारम्भः

प्रथमोऽध्यायः

अयोध्या माहात्म्य, व्यास-अगस्त्य संवाद, विष्णुशर्मा को भगवान् द्वारा वर देना

जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः।
यस्याऽऽस्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत्पिबति।।१।।
नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैवनरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत्।।२।।

जगत् जिनके मुखकमल से विगलित वाङ्मय अमृत का पान करता है, उन सरस्वती नन्दन पराशर तनय व्यास की जय हो। नारायण, नरोत्तम नर, देवी तथा सरस्वती को प्रणाम करके तदनन्तर जय (पुराण) का उच्चारण करता हूं।।१-२।।

व्यास उवाच

हिमवद्वासिनःसर्वे मुनयो वेदपारगाः। त्रिकालज्ञा महात्मानो नैमिषारण्यवासिनः।।३।।
येऽर्बुदारण्यनिरता दण्डकारण्यवासिनः। महेन्द्राद्रिरतायै वै ये चविन्ध्यनिवासिनः।।४।।
जम्बूवनरता ये च ये गोदावरिवासिनः। वाराणसीश्रिता येच मथुरावासिनस्तथा।।५।।
उज्जयिन्यां रता ये च प्रथमाश्रमवासिनः। द्वारावतीश्रिता येच वदर्य्याश्रयिणस्तथा।।६।।
मायापुरीश्रिता ये चयेचकान्तीनिवासिनः। एतेचान्येचमुनयःसशिष्याबह्वोऽमलाः।।७।।
कुरुक्षेत्रे महाक्षेत्रे सत्रे द्वादशवार्षिके। वर्तमाने च रामस्य क्षितीशस्य महात्मनः।
समागताः समाहूताः सर्वे ते मुनयोऽमलाः।।८।।

व्यास जी कहते हैं—महाक्षेत्र, कुरुक्षेत्र में पृथिवीपति राम का द्वादश वार्षिक सत्र प्रवर्त्तित होने पर हिमालय निवासी वेदनिष्णात मुनिगण, नैमिष निवासी त्रिकालज्ञ महात्मा मुनिगण तथा अर्बुदारण्य, दण्डकारण्य, महेन्द्रपर्वत एवं विन्ध्यवासी, जम्बूवनसेवी, गोदावरी तटवासी, वाराणसी निवासी, मथुरा-उज्जयिनी-द्वारिका निवासी, बदरीवनवासी-मायापुरीवासी, कान्ती निवासी ब्रह्मचर्यरत ऋषि, तपस्वी अनेक शिष्य समन्वित अमलाशय अन्यान्य मुनिगण भी वहां आये थे। ये सभी शुद्ध हृदय, वेद-वेदाङ्ग पारंगत, मुनिवृत्तिपरायण थे। ये लोग उस यज्ञसत्र में सम्मिलित हुये।।३-८।।

सर्वे ते शुद्धमनसो वेदवेदाङ्गपारगाः। तत्रस्नात्वा यथान्यायं कृत्वा कर्म जपादिकम्।।९।।

भारद्वाजं पुरस्कृत्य वेदवेदाङ्गपारगम्। आसनेषु विचित्रेषु बृष्यादिषु ह्यनुक्रमात्॥१०॥
उपविष्टाः कथाश्चक्रुर्नानातीर्थाश्रितास्तदा। कर्मान्तरेषुसत्रस्यसुखासीनाःपरस्परम्॥११॥
कथान्तेषु ततस्तेषां मुनीनांभावितात्मनाम्। आजगाममहातेजास्तत्रसूतोमहामतिः॥१२॥
व्यासशिष्यः पुराणज्ञो रोमहर्षणसञ्ज्ञकः। तान्प्रणम्य यथान्यायं मुनीनांवचनेनसः।
उपविष्टो यथान्यायं मुनीनां वचनेन सः॥१३॥
व्यासशिष्यं मुनिवरं सूतं वै रोमहर्षणम्। तं पप्रच्छुर्मुनिवरा भारद्वाजादयोऽमलाः॥१४॥

इन सब ऋषियों ने यज्ञसत्र क्षेत्र में आकर स्नान तथा यथाविधि जपादि कर्म सम्पन्न करके वेद-वेदांग पारंगत भरद्वाज को आगे किया तथा सभी विचित्र कृष्णसार मृगचर्म पर बैठ गये। तदनन्तर यज्ञक्रिया समापित होने पर वे सब सुखासीन ऋषिगण परस्परतः तीर्थों के सम्बन्ध में अनेक कथनोपकथन करने लगे। जब उन भावितात्मा मुनिगण में परस्पर वार्त्ता, सम्भाषण चल ही रहा था, तभी पुराणज्ञ महामति महातेजस्वी रोमहर्षणनन्दन व्यासशिष्य सूत वहां पहुंचे। उन्होंने आकर मुनिगण को प्रणाम किया तथा उनकी आज्ञा मिलने पर यथायोग्य आसन पर आसीन हो गये। तदनन्तर भारद्वाज आदि निष्कलुष मुनिगण ने व्यासशिष्य मुनिसत्तम रोमहर्षण सूत से पूछा।।९-१४।।

ऋषय ऊचुः

त्वत्तः श्रुता महाभागनानातीर्थाश्रिताःकथाः। सरहस्यानिसर्वाणिपुराणानिमहामते॥१५॥
साम्प्रतंश्रोतुमिच्छामःसरहस्यंसनातनम्। अयोध्यायामहापुर्यामहिमानंगुणोज्ज्वलम्॥१६॥
कीदृशीसा सदा मेध्याऽयोध्या विष्णुप्रिया पुरी।
आद्या सा गीयते वेदे पुरीणां मुक्तिदायिका॥१७॥
संस्थानं कीदृशं तस्यास्तस्यां के च महीभुजः।
कानि तीर्थानि पुण्यानि महात्म्यं तेषुकीदृशम्॥१८॥
अयोध्यासेवनान्नृणां फलं स्यात् सूत! कीदृशम्।
किं चरित्रं सूत! तस्याः का नद्यः के च सङ्गमाः॥१९॥
तत्र स्नानेन किं पुण्यं दानेन च महामते!।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामस्त्वत्तः सूत! गुणाधिक!॥२०॥
एतत्सर्वं क्रमेणैव तथ्यं त्वं वेत्थ साम्प्रतम्। अयोध्याया महापुर्या माहात्म्यं वक्तुमर्हसि॥२१॥

ऋषिगण कहते हैं—हे महाभाग सूत! हमने आपसे तीर्थ सम्बन्धित अनेक उपाख्यान सुना है। आपने रहस्य के साथ पुराणों का भी हमें श्रवण कराया है। सम्प्रति हम सब महापुरी अयोध्या की उत्तमगुणमयी रहस्ययुक्त सनातन महिमा सुनना चाहते हैं। वेदों का मत है कि पुरियों में मुक्तिप्रदा अयोध्या ही आद्या है। आप कृपया कहिये कि यह विष्णुप्रिया, सतत् पवित्ररूप अयोध्यापुरी क्या है? किस-किस राजा ने अयोध्या का उपभोग किया है? वहां पर कौन-कौन से पुण्यतीर्थ स्थित हैं? अयोध्या के सेवन से मनुष्यों को क्या प्राप्त होता

है? हे सूत! अयोध्या की प्राकृतिक स्थिति क्या है? वहां कौन-कौन नदी है? वहां किस-किस नदी का संगम है? हे महामति! मानवगण स्नान-दान द्वारा वहां क्या-क्या पुण्यलाभ करते हैं? हे गुणाधिक सूत! हम आपके मुख से यह सब सुनने की इच्छायुक्त हैं। आपको यह सब तथ्य विदित है। सम्प्रति आप यथाक्रमेण इस महापुरी अयोध्या का माहात्म्य हमें बतायें।''।।१५-२१।।

सूत उवाच

व्यासप्रसादाज्जानामिपुराणानितपोधनाः। सेतिहासानिसर्वाणिसरहस्यानितत्त्वतः॥२२॥
तं प्रणम्य प्रवक्ष्यामि माहात्म्यंभवदग्रतः। अयोध्यायामहापुर्यायथावत्सरहस्यकम्॥२३॥

सूत जी कहते हैं—''हे तपोधनगण! मैंने जिनकी कृपा से इतिहास-रहस्य समन्वित पुराणों को तत्वतः जाना है, उनको प्रणाम करके महापुरी अयोध्या की सरहस्यमयी माहात्म्य कथा का आप लोगों से यथायथ वर्णन करता हूं।''।।२२-२३।।

विद्यावन्तं विपुलमतिदं वेदवेदाङ्गवेद्यं श्रेष्ठं शान्तं शमितविषयं शुद्धतेजोविशालम्।
वेदव्यासं सततविनतं विश्ववेद्यैकयोनिं पाराशर्य्यं परमपुरुषं सर्वदाऽहं नमामि॥२४॥
ॐनमोभगवतेतस्मैव्यासायामिततेजसे। यस्यप्रसादाज्जानामिह्ययोध्यामहिमामहम्॥२५॥

श्रृण्वन्तु मुनयः सर्वे सावधानाः सशिष्यकाः।
माहात्म्यं कथयिष्यामि अयोध्याया महोदयम्॥२६॥

''जो सब कुछ जानते हैं, जिनकी कृपा से विपुल ज्ञान लाभ होता है, वेद-वेदाङ्ग से जिनके स्वरूप की अभिज्ञता होती है, जो श्रेष्ठ तथा शान्त हैं। जिनका चित्त रूपादि विषयों से रहित हो चुका है, जो अपने विशुद्ध तेज से ही परिव्याप्त हो रहे हैं, जो सदा विनत हैं तथा विश्ववृत्तान्त के ज्ञाता हैं, मैं उन पराशरपुत्र परमपुरुष वेदव्यास को सतत् प्रणाम करता हूं। मैंने जिनकी कृपा से अयोध्या की महिमा को जाना है, उन अमित तेजस्वी व्यास को ''ॐ नमो भगवते व्यासाय'' मन्त्र से प्रणाम करता हूं। हे मुनिगण! मैं अतुलित अभ्युदय शालिनी अयोध्या की महिमा का वर्णन करता हूं। आप सब समाहित मन से अपने शिष्यों के साथ सुनें।।२४-२६।।

उदीरितमगस्त्याय स्कन्देनाऽश्रावि नारदात्।
अगस्त्येन पुरा प्रोक्तं कृष्णद्वैपायनाय तत्॥२७॥
कृष्णद्वैपायनाच्चैतन्मयाप्राप्तं तपोधनाः। तदहं वच्मि युष्मभ्यंश्रोतुकामेभ्यआदरात्॥२८॥
नमामि परमात्मानं रामं राजीवलोचनम्। अतसीकुसुमश्यामं रावणान्तकमव्ययम्॥२९॥

हे तपोधनगण! इस अयोध्या माहात्म्य को पूर्वकाल में नारद से स्कन्द ने सुना था। उन्होंने इसे अगस्त्य से कहा। अगस्त्य से इसे कृष्णद्वैपायन ने सुना। भगवान् कृष्ण द्वैपायन से मैंने इसे प्राप्त किया था। आप सबने इस अयोध्या माहात्म्य को श्रद्धापूर्वक सुनना चाहा है, अतः मैं इसे आपसे कहता हूं। जिन्होंने रावण का वध किया था जिनका वर्ण अतसी पुष्प के समान श्यामवर्ण है, मैं उन अव्यय कमलनयन परमात्मा राम को नमस्कार करता हूं।।२७-२९।।

अयोध्या सा परा मेध्या पुरी दुष्कृतिदुर्ल्लभा।
कस्य सेव्या च नाऽयोध्या यस्यां साक्षाद्धरिः स्वयम्॥३०॥

सरयूतीरमासाद्य दिव्यापरमशोभना। अमरावती निभा प्रायः श्रिता बहुतपोधनैः॥३१॥

हस्त्यश्वरथपत्त्याढ्या सम्पदुच्चा च संस्थिता।
प्राकाराढ्यप्रतोलीभिस्तोरणैः काञ्चनप्रभैः॥३२॥

सानूपवेषैः सर्वत्र सुविभक्तचतुष्टया। अनेकभूमिप्रासादाबहुभित्तिसुविक्रिया॥३३॥

पद्मोत्फुल्लशुभोदाभिर्वापीभिरुपशोभिता। देवतायतनैर्दिव्यैर्वेदघोषैश्च मण्डिता॥३४॥

वीणावेणुमृदङ्गादिशब्दैरुत्कृष्टताङ्गता। शालैस्तालैर्नालिकेरैःपनसामलकैस्तथा॥३५॥

तथैवाम्रकपित्थाद्यैरशोकैरुपशोभिता। आरामैर्विविधैर्युक्ता सर्वर्तुफलपादपैः॥३६॥

जो पुरी अतीव पावन है, जो स्थान दुष्कृति कर्मा लोगों को प्राप्त नहीं होता, जहां स्वयं हरि मूर्त्त होकर विराजमान हैं उस अयोध्या की सेवा कौन नहीं करता? अमरपुरी जैसी परम शोभाशालिनी दिव्यपुरी अयोध्या सरयूतट पर विराजित है। इस पुरी में सर्वत्र तपोधनगण विराजित रहते हैं। हाथी-अश्व-रथ तथा पैदल आदि अन्य समृद्धि द्वारा यह पुरी अतीव उन्नत मस्तक होकर स्थित है। इस पुरी की चाहारदिवाली, मुख्य सड़क, तोरण आदि सभी स्वर्ण सदृश है। यह सर्वत्र सड़क द्वारा विभक्त तथा चतुः अवयव युक्त पुरी है। इसके भूमिभाग पर अनेक प्रासाद विद्यमान हैं। इन प्रासाद श्रेणी की दीवार अत्यन्त गंभीर है। यहां प्रफुल्ल कमलों से भरी निर्मल जलयुक्त अनेक वापी नगर की शोभावृद्धि कर रही हैं। यहां चारों ओर, सर्वत्र देवगृह (मंदिर) विद्यमान हैं। चतुर्दिक् वेदध्वनि तथा वेणु-वीणा और मृदंग आदि वाद्यों की ध्वनि मुखरित हो रही है। साथ ही देवगृहों से भूषित होकर यह पुरी अतीव मनोहारी प्रतीत हो रही है। यह शाल, तमाल, नारियल, कटहल, आमलक, आम, कैंथा, अशोक वृक्षों से व्याप्त है। यहां विविध आराम (वाग) तथा उद्यान इस पुरी की शोभा वृद्धि कर रहे हैं। यहां के पादप सभी ऋतुओं में पुष्प-फलप्रद होते हैं।।३०-३६।।

मालतीजातिबकुलपाटलीनागचम्पकैः। करवीरैः कर्णिकारैः केतकीभिरलङ्कृता॥३७॥

निम्बजम्बीरकदलीमातुलिङ्गमहाफलैः। लसच्चन्दनगन्धाढ्यैर्नागरैरुपशोभिता॥३८॥

देवतुल्याप्रभायुक्तैर्नृपपुत्रैश्च संयुता। सुरूपाभिर्वरस्त्रीभिर्देवस्त्रीभिरिवावृता॥३९॥

श्रेष्ठैः सत्कविभिर्युक्ताबृहस्पतिसमैर्द्विजैः। वणिग्जनैस्तथा पौरैःकल्पवृक्षैरिवावृता॥४०॥

अश्वैरुच्चैः श्रवस्तुल्यैर्दन्तिभिर्दिग्गजैरिव। इति नानाविधैर्भावैरुपेतेन्द्रपुरीसमा॥४१॥

यहां मालती, जाती, बकुल, पाटली, नागचम्पा, कनेर, कर्णिकार तथा केतकीपुष्प तथा प्रचुर फलयुक्त नीम, जम्बीर, कदली, मातुलुङ्ग वृक्षश्रेणी से सभी बाग शोभित हो रहे हैं। समृद्ध चन्दनगंधयुक्त नागरिकगण तथा देवताओं के समान राजकुमार नगर में घूमते रहते हैं। यहां अप्सराओं की तरह सुरूपा रमणीगण भी नगरी में विचरती रहती हैं। कहीं पर श्रेष्ठ ब्राह्मण बृहस्पति के समान सत्कवियों के साथ सम्भाषण करते हुये जा रहे हैं। कहीं पुरवासी कल्पतरु के समान वणिकों के साथ व्यापार चर्चा में (खरीद-बिक्री) में लगे हैं। कहीं उच्चैश्रवा (देवताओं के अश्व) के समान घोड़े घूम रहे हैं। कहीं दिग्गजों के समान बृहद् हाथी जिनके बड़े-बड़े दांत हैं विचर रहे हैं। इस प्रकार नाना समृद्धियों से समृद्ध अयोध्या देवपुरी से समानता करती हुई विराजित है।।३७-४१।।

यस्यांजातामहीपालाः सूर्यवंशसमुद्भवाः। इक्ष्वाकुप्रमुखाः सर्वे प्रजापालनतत्पराः॥४२॥

यस्यास्तीरे पुण्यतोया कूजद्भृङ्गविहङ्गमा। सरयूर्नाम तटिनी मानसप्रभवोल्लसा॥४३॥
धर्मद्रवपरीता सा घर्घरोत्तमसङ्गमा। मुनीश्वराश्रिततटा जागर्ति जगदुच्छ्रिता॥४४॥

इक्ष्वाकु वंशोत्पन्न प्रजापालनरत सूर्यवंश समुद्भूत राजा इस अयोध्या में जन्मे थे। जो सरयू नदी मानस सरोवर से उत्पन्न है, जिसका जल पुण्यमय है, जिसके तट पर लगे वृक्षों पर भृंग समूह एवं पक्षीगण कूजन-गुंजन करते रहते हैं, जहां साक्षात् धर्म द्रवीभूत (जलरूप) होकर उसके कलेवर को पूर्ण करता रहता है, जो उत्तम घर्घर (घाघरा) नद के साथ मिल जाती हैं, जिसके तट पर मुनिजन का निवास है, जो अपने स्फीत प्रवाह से जगत् को प्लावित कर रही हैं, उस सरयू तट पर महापुरी अयोध्या विराजमान है।।४२-४४।।

दक्षिणाच्चरणाङ्गुष्ठान्निःसृता जाह्नवी हरेः। वामाङ्गुष्ठान्मुनिवराः सरयूर्निर्गता शुभा॥४५॥
तस्मादिमे पुण्यतमे नद्यौ देवनमस्कृते। एतयोः स्नानमात्रेण ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥४६॥

तामयोध्यामथ प्राप्तोऽगस्त्यः कुम्भोद्भवो मुनिः।
यात्रार्थं तीर्थमाहात्म्यं ज्ञात्वा स्कन्दप्रसादतः॥४७॥

हे मुनीश्वरों! जैसे जाह्नवी नदी विष्णु के चरण के दाहिने अंगूठे से निकली है, उसी प्रकार सरयू भी विष्णु के चरणकमल के वामाङ्गुष्ठ से निःसृत हैं। यह शुभा सरिता हैं। अतः ये दोनों नदियां पुण्यतमा हैं। देवगण इन दोनों नदियों को प्रणाम करते हैं। इन दोनों नदियों में स्नान करने मात्र से मानव ब्रह्महत्या जनित पाप को नष्ट कर देता है। कुंभ से उत्पन्न अगस्त्य ने प्रभु स्कन्द की कृपा द्वारा इस तीर्थ माहात्म्य को जाना था। वे तीर्थयात्रा करते अयोध्या आये थे।।४५-४७।।

आगत्यतुपुनःसोऽपिकृत्वायात्रांक्रमेणच। यथोक्तेनविधानेनस्नात्वासन्तर्प्यतान्पितॄन्॥४८॥
पूजयित्वायथान्यायंदेवताःसकलाअपि। सर्वाण्यपिचतीर्थानिनमस्कृत्ययथाविधि॥४९॥
कृतकृत्योर्ज्जितानन्दस्तीर्थमाहात्म्यदर्शनात्। अभूदगस्त्योरूपेण पुलकाञ्चितविग्रहः॥५०॥

स त्रिरात्रं स्थितस्तत्र यात्रां कृत्वा यथाविधि।
स्तुवन्नयोध्यामाहात्म्यं प्रतस्थे मुनिसत्तमः॥५१॥
तमायान्तं विलोक्याऽऽशु बहुलानन्दसुन्दरम्।
कृष्णद्वैपायनो व्यासः पप्रच्छाऽऽनन्दकारणम्॥५२॥

वे अयोध्या आये तथा तीर्थयात्रा विधानानुसार उन्होंने सरयूजल में स्नान, पितृतर्पण, देवपूजन तथा तीर्थों को नमस्कार किया। इससे वे कृतकृत्य एवं आनन्दित हो गये। तदनन्तर तीर्थ माहात्म्य को देखकर वे पुलकित तथा रोमांचित भी हो गये। मुनिवर अगस्त्य ने तीर्थयात्रा विधानानुसार यहां तीन रात्रि पर्यन्त निवास करके यथाविधान अयोध्या माहात्म्य का कीर्त्तन करते-करते यहां से प्रस्थान किया था। तदनन्तर कृष्णद्वैपायन व्यास ने जब आनन्द की बहुलता से पुलकित शरीर ऋषि को आते देखा, तब उनसे उनके आनन्द का कारण पूछा।।४८-५२।।

व्यास उवाच

कुतः समागतो ब्रह्मन्साम्प्रतं मुनिसत्तमः। परमानन्दसन्दोहः समभूत्साम्प्रतं तव॥५३॥

कस्मादानन्दपोषोऽभूत्तव ब्रह्मन्वदस्व मे। ममापि भवदानन्दात्प्रमोदोहृदि जायते॥५४॥

महर्षि व्यास कहते हैं—"हे ऋषिप्रवर! आप कहां से आ रहे हैं? हे ब्रह्मन्! मैं देख रहा हूं कि आप में परम आनन्द उच्छलित हो रहा है। हे ब्रह्मन्! आपको यह हर्ष क्यों हो रहा है, मुझे बतायें। आपको आनन्दित देखकर मैं भी प्रमुदित हो रहा हूं।।५३-५४।।

अगस्त्य उवाच

अहो महदथाश्चर्य्यं विस्मयो मुनिसत्तम्!। दृष्ट्वाप्रभावं मेऽद्याभूदयोध्यायास्तपोधन॥५५॥
तस्मादानन्दसन्दोहः समभून्मम साम्प्रतम्।
तच्छ्रुत्वागस्त्यवचनं व्यासः प्रोवाच तं मुनिम्॥५६॥

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—"हे मुनिश्रेष्ठ! यह अत्यन्त आश्चर्य का विषय है, हे तपोधन! आज अयोध्या का प्रभाव देखकर मुझे अत्यन्त विस्मय हो रहा है। मैं अयोध्या गया था। उस अयोध्या के कारण मेरी यह आनन्दित अवस्था हो सकी है।" ऋषि अगस्त्य का यह वाक्य सुनकर महर्षि व्यास उनसे कहने लगे।।५५-५६।।

व्यास उवाच

भगवन्ब्रूहितत्त्वेनविस्तरात्सरहस्यकम्। अयोध्यायामहापुर्या महिमानंगुणाधिकम्॥५७॥
कः क्रमस्तीर्थयात्रायाः कानि तीर्थानि को विधिः।
किं फलं स्नानतस्तत्र दानस्य च महामुने!।
एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तराद्वदताम्वर॥५८॥

महर्षि व्यास कहते हैं—हे भगवान्! यदि अयोध्या का इतना गुणबहुल प्रभाव है, तब रहस्य के साथ आप मुझसे इस महापुरी की महिमा का वर्णन करिये। हे महामुनि! अयोध्या यात्रा का क्रम क्या है? वहां कौन-कौन तीर्थ हैं? उन तीर्थ सेवन की क्या विधि है? उनमें स्नान-दान का पृथक्-पृथक् फल क्या मिलता है? हे वाग्मीप्रवर! यह सब मुझे बतलायें।।५७-५८।।

अगस्त्य उवाच

अहो धन्यतमाबुद्धिस्तवजातातपोधन!। दृश्यते येन पृच्छा ते ह्ययोध्यामहिमाश्रिता॥५९॥
अकारो ब्रह्म च प्रोक्तं यकारो विष्णुरुच्यते। धकारो रुद्ररूपश्च अयोध्यानाम राजते॥६०॥
सर्वोपपातकैर्युक्तैर्ब्रह्महत्यादिपातकैः। नायोध्या शक्यतेयस्मात्तामयोध्यांततोविदुः॥६१॥
विष्णोराद्या पुरी येयं क्षितिं न स्पृशति द्विज!।
विष्णोः सुदर्शने चक्रे स्थिता पुण्यकरी क्षितौ॥६२॥
केन वर्णयितुं शक्यो महिमाऽस्यास्तपोधन!।
यत्र साक्षात्स्वयं देवो विष्णुर्वसति सादरः॥६३॥
सहस्रधारामारभ्य योजनं पूर्वतोदिशि। तथैवदिक्प्रतीच्यां वै योजनं समतोऽवधिः॥६४॥

दक्षिणोत्तरभागे तु सरयूतमसावधिः। एतत्क्षेत्रस्य संस्थानं हरेरन्तर्गृहंस्थितम्॥६५॥
मत्स्याकृतिरियंविप्रपुरीविष्णोरुदीरिता। पश्चिमेतस्यमूर्द्धातुमोप्रतारासिताद्द्विज॥६६॥
पूर्वतः पृष्ठभागो हि दक्षिणोत्तमरमध्यमः।
तस्यां पुर्य्यां महाभाग! नाम्ना विष्णुर्हरिः स्वयम्।
पूर्वं दृष्टप्रभावोऽसौ प्राधान्येन वसत्यपि॥६७॥

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—हे तपोधन! तुम्हारी बुद्धि धन्य है। देखता हूं कि अयोध्या माहात्म्य सुनने की तुम्हारी तीव्र इच्छा हो रही है। शास्त्र वचन है कि 'अ' कार ब्रह्मा है, 'य'कार विष्णु है। 'ध' रुद्ररूपी हैं। अयोध्या इस प्रकार के वर्णत्रय से सम्पन्न होकर विराजमान है। अर्थात् यहां ये त्रिदेव सदा निवास करते हैं। अतः इस क्षेत्र का नाम है अयोध्या। समस्त उपपातकों सहित ब्रह्महत्यादि पाप भी इस क्षेत्र को आक्रान्त करने में समर्थ नहीं हैं। अतः पण्डितगण इसे अयोध्या नाम से जानते हैं। यह विष्णु की आद्यपुरी है। यह पुरी मृत्तिका (भूमि) का स्पर्श नहीं करती। यह विष्णु के चक्र पर विराजित रहकर पुण्यप्रदा हो गयी है। हे तपोधन! इस स्थान पर श्रीहरि शरीरधारी होकर आदर के साथ विराजमान रहते हैं। इस क्षेत्र की महिमा का वर्णन कौन कर सकता है। यह पूर्व में सहस्रधारा से लेकर एक योजन पर्यन्त है। पश्चिम दिशा में यह सम (?) से लेकर योजन पर्यन्त विस्तृत है। दक्षिण में यह सरयू से एक योजन पर्यन्त है। उत्तर में यह तमसा से एक योजन पर्यन्त है। यही अयोध्या क्षेत्र का संस्थान है। इस स्थान के मध्य में हरि का अन्तर्गृह स्थित है। हे विप्र! यह विष्णुपुरी मत्स्याकृति है। हे द्विज! इसका मस्तक पश्चिम की ओर गोप्रतार तथा असिता पर्यन्त है। इसका पुच्छभाग पूर्व दिशा की ओर है तथा मध्यभाग उत्तर एवं दक्षिण की ओर है। हे महाभाग! हरि इस पुरी में विष्णुविग्रह रूपेण विराजमान रहते हैं। मैंने वहां निवास करके उसके उत्तम प्रभाव को देखा है।।५९-६७।।

व्यास उवाच

भगवन्किम्प्रभावोऽसौ योऽयं विष्णुहरिस्त्वया।
कीर्तितो मुनिशार्दूल प्रसिद्धिं गतवान्कथम्।
एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तरेण ममाऽग्रतः॥६८॥

महर्षि व्यास कहते हैं—हे भगवान्! आपने जो यह कहा कि अयोध्या में श्रीहरि विष्णुरूपी होकर पुरीमध्य में विराजमान हैं, हे मुनिशार्दूल! अब यह बतलायें कि इन विष्णु का प्रभाव क्या है? तथा उनकी प्रसिद्धि कैसे हो सकी? यह सब विस्तारपूर्वक कहिये।।६८।।

अगस्त्य उवाच

विष्णुशर्मेति विख्यातः पुराऽभूद्ब्राह्मणोत्तमः। वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञोधर्मकर्मसमाश्रितः॥६९॥
योगध्यानरतो नित्यंविष्णुभक्तिपरायणः। सकदाचित्तीर्थयात्रांकुर्वन्वैष्णवसत्तमः।
अयोध्यामागतो विष्णुर्विष्णुः साक्षाद्वसेदिति॥७०॥
चिन्तयन्मनसा वीरस्तपः कर्तुंसमुद्यतः। स वै तत्र तपस्तेपे शाकमूलफलाशनः॥७१॥

अगस्त्य कहते हैं—पूर्वकाल में विष्णुशर्मा नामक एक विख्यात तथा श्रेष्ठ ब्राह्मण थे। वे वेदवेदाङ्ग निष्णात तथा अनेक तत्व के ज्ञाता थे। विष्णुशर्मा निरन्तर धर्म कार्य करते रहते थे। वे योगध्यान तत्पर विष्णुभक्त वैष्णव प्रवर विष्णुशर्मा एक बार तीर्थयात्रा प्रसंग में अयोध्या आये। उन्होंने विचार किया कि साक्षात् विष्णु का यहां निवास है। अतः मैं यहां तप करूंगा। वीर विष्णुशर्मा इस विचार को स्थिर करके फल मूल आहार अपनाकर वहां तप करने लगे।।६९-७१।।

ग्रीष्मेपञ्चाग्निमध्यस्थो ह्यतपत्स महातपाः। वार्षिकेच निरालम्बोहेमन्ते च सरोवरे।।७२।।

स्नात्वा यथोक्तविधिना कृत्वा विष्णोस्तथाऽर्चनम्।
वशीकृत्येन्द्रियग्रामं विशुद्धेनाऽन्तरात्मना।।७३।।

मनोविष्णौसमावेश्यविधायप्राणसंयमम्। ॐकारोच्चारणाद्धीमान्हृदिपद्मंविकाशयन्।।७४।।

तन्मध्येरविसोमाग्निमण्डलानियथाविधि। कल्पयित्वाहरिंमूर्तंयस्मिन्देशेसनातनम्।।७५।।

पीताम्वरधरं विष्णुं शङ्खचक्रगदाधरम्। तञ्चपुष्पैःसमभ्यर्च्य मनस्तस्मिन्निवेश्यच।।७६।।

ब्रह्मरूपं हरिंध्यायञ्जपन्वैद्वादशाक्षरम्। वायुभक्षःस्थितस्तत्र विप्रस्त्रीन्वत्सरान्वसन्।।७७।।

ततो द्विजवरो ध्यात्वा स्तुतिञ्चक्रे हरेरिमाम्। प्रणिपत्यजगन्नाथं चराचरगुरुंहरिम्।
विष्णुशर्माऽथ तुष्टाव नारायणमतन्द्रितः।।७८।।

महात्मा विष्णुशर्मा ग्रीष्मकाल में पञ्चाग्नि के बीच, वर्षाकाल में छायारहित स्थान में तथा हेमन्तकाल में जलपूर्ण सरोवर में खड़े होकर तप कर रहे थे। उनकी इन्द्रियां वशीभूत थीं। उनका अन्तःकरण विशुद्ध था। वे यथाविधान स्नान तथा विष्णु की अर्चना करने लगे। धीमान् विष्णुशर्मा ने प्राणवायु का संयम करके विष्णु में मनोनिवेश किया। ॐकार उच्चारण के फलस्वरूप उनका हृदयकमल प्रकाशित हो उठा। उन्होंने उस विकसित हृत्कमल में सूर्यचन्द्र तथा अग्निमण्डल की यथाविधि भावना करके पीताम्बरधारी, शंख-चक्र-गदाधारी हरि की सनातन मूर्त्ति की (भावनात्मक) पुष्पों से पूजा किया तथा उसी में मनोनिवेश कर लिया। अब वे मात्र वायु भक्षण करते जीवनयापन कर रहे थे तथा सतत् द्वादशाक्षर मन्त्र जप के साथ हरि के ब्रह्मरूप का ध्यान करते रहते थे। इस प्रकार तप करते हुये तीन वर्ष व्यतीत हो गये। तत्पश्चात् ध्यानावसान होने पर आलस्यरहित विष्णुशर्मा चराचरगुरु नारायण श्रीहरि को प्रणाम करके इस स्तुति वाक्य द्वारा उनका स्तव करने लगे।।७२-७८।।

विष्णुशर्मोवाच

प्रसाद भगवन्विष्णो! प्रसीद पुरुषोत्तम!। प्रसीद देवदेवेश! प्रसीद कमलेक्षण!।।७९।।

जयकृष्ण! जयाचिन्त्य! जयविष्णो! जयाव्यय!।
जययज्ञपते! नाथ! जयविष्णोपतेविभो।।८०।।

जय पापहरानन्त जय जन्मज्वरापह। नमः कमलनाभाय नमः कमलमालिने।।८१।।

विष्णुशर्मा कहते हैं—हे भगवान्! प्रसन्न हों। हे विष्णु! पुरुषोत्तम! प्रसन्न हों! हे कमलनयन, देवदेवेश प्रसन्न हो जायें। हे कृष्ण! आप चिन्तन से अतीत हैं। हे विष्णु, अव्यय! आपकी जय हो। हे विभु! आपकी जय

हो, आप यज्ञपति तथा त्रैलोक्यपति हैं। हे नाथ, विष्णु! आपकी जय हो! आप पाप, जन्म तथा जरा का हरण करते हैं। आपकी जय हो! हे कमलनाभ, हे कमलमालाधारी! आपको प्रणाम!।७९-८१।।

नमः सर्वेश भूतेश तमः कैटभसूदन!। नमस्त्रैलोक्यनाथाय जगन्मूल! जगत्पते।।८२।।
नमो देवाधिदेवाय नमो नारायणाय वै। नमः कृष्णाय रामाय नमश्चक्रायुधाय च।।८३।।
त्वं माता सर्वलोकानां त्वमेव जगतःपिता।
भयार्त्तानां सुहृन्मित्रं त्वं पिता त्वं पितामहः।।८४।।
त्वं हविस्त्वं वषट्कारस्त्वं प्रभुस्त्वं हुताशनः। करणं कारणं कर्त्ता त्वमेव परमेश्वरः।।८५।
शङ्खचक्रगदापाणे! मां समुद्धर माधव!।।८६।।
प्रसीद मन्दरधर! प्रसीद मधुसूदन!। प्रसीद कमलाकान्त प्रसीद भुवनाधिप!।।८७।।

हे भूतपति! हे सर्वेश! आपने कैटभासुर का वध किया था। आपको प्रणाम! हे जगत्पति! आप त्रैलोक्यपति तथा जगत् के मूलकारणरूप हैं। आपको प्रणाम! हे नारायण! आप देवाधिदेव, कृष्ण एवं बलराम हैं। आप चक्रायुध हैं। आपको प्रणाम! आप सर्वलोकसमूह के माता-पिता हैं। आप जगत्पिता तथा भयभीत लोगों के (भयनाशक) सुहृद भी हैं। आप ही पिता-पितामह-हरि-वषट्कार-प्रभु तथा हुताशन अग्नि हैं। आप ही करण-कारण-कर्त्ता तथा परमेश्वर भी हैं। आपके हाथों में शंख-चक्र-गदा विद्यमान है। हे माधव! मेरा उद्धार करिये। आपने मन्दराचल को धारण किया था। हे मधुसूदन! मुझ पर प्रसन्न हों! हे कमलाकान्त! मुझ पर प्रसन्न हो जाईये, मुझ पर प्रसन्न हो जाईये।।८२-८७।।

अगस्त्य उवाच

इत्येवं स्तुवतस्तस्यमनोभक्त्त्यामहात्मनः। आविर्बभूव विश्वात्मा विष्णुर्गरुडवाहनः।।८८।।
शङ्खचक्रपदापाणिः पीताम्बरधरोऽच्युतः। उवाचस प्रसन्नात्माविष्णुशर्माणमव्ययः।।८९।।

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—महात्मा विष्णुशर्मा ने जब इस प्रकार भक्तिपूर्वक विष्णु का स्तव किया, तब पीताम्बरधारी शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी अव्यय, अच्युत, गरुड़ारूढ़ विश्वात्मा विष्णु वहां आविर्भूत हो गये। भगवान् उन ब्राह्मण विश्वशर्मा के प्रति अतीव प्रसन्न होकर कहने लगे।।८८-८९।।

श्रीभगवानुवाच

तुष्टोऽस्मि भवतो वत्स महता तपसाऽधुना।
स्तोत्रेणानेन सुमते! नष्टपापोऽसिसाम्प्रतम्।।९०।।
वरम्वरयविप्रेन्द्र! वरदोऽहं तवाऽग्रतः। नाऽतप्तपसा द्रष्टुं शक्यः केनाऽप्यहं द्विज!।।९१।।

श्री भगवान् कहते हैं—हे वत्स! सम्प्रति तुम्हारी तीव्र तपस्या को देखकर मैं तुम पर प्रसन्न हो गया। तुमने मेरा जो स्तव किया है, उसके द्वारा तुम निष्पाप हो गये। हे विप्रेन्द्र! मैं वर देने के लिये आया हूं। तुम वर मांगो। हे द्विज! कोई भी तपस्या रहित होकर मेरा दर्शन नहीं पा सकता।।९०-९१।।

विष्णुशर्म्मोवाच

कृतकृत्योऽस्मि देवेश साम्प्रतं तवदर्शनात्। त्वद्भक्तिमचलामेकां मम देहि जगत्पते।।९२।।

विष्णुशर्मा कहते हैं—हे देवेश! आपका दर्शन लाभ करके मैं आज कृतार्थ हो गया। हे जगत्पति! आपके प्रति मेरी सदैव अचलाभक्ति बनी रहे। मुझे यही वर दीजिये।।९२।।

श्रीभगवानुवाच

भक्तिरस्त्वचलामेवैवैष्णवीमुक्तिदायिनी। अत्रैवास्त्वचलामेवै जाह्नवीमुक्ति दायिनी।।९३।।
इदं स्थानं महाभाग! त्वन्नाम्ना ख्यातिमेष्यति।।९४।।

भगवान् कहते हैं—हे महाभाग! तुम्हारी मुक्तिप्रदा वैष्णवी भक्ति अचला हो जाये। मेरे आदेशानुसार मुक्तिजननी जाह्नवी देवी यहां अचलरूप से विराजित रहें। मेरा यह स्थान तुम्हारे नाम से प्रसिद्ध हो जाये।।९३-९४।।

अगस्त्य उवाच

इत्युक्त्वादेवदेवेशश्चक्रेणोत्खायतत्स्थलम्। जलं प्रकटयामास गाङ्गंपातालमण्डलात्।।९५।।
जलेन तेन भगवान्पवित्रेण दयाम्बुधिः। नीरजस्कं भूमितलं क्षणाच्चक्रे कृपावशात्।।९६।।
चक्रतीर्थमिति ख्यातं ततः प्रभृति तद् द्विज!।
जातं त्रैलोक्यविख्यातमघौघध्वंसकृच्छुभम्।।९७।।
तत्र स्नानेन दानेन विष्णुलोकम्व्रजेन्नरः।।९८।।
ततः स भगवान्भूयोविष्णुशर्माणमच्युतः। कृपया परया युक्त उवाच द्विजवत्सलः।।९९।।

अगस्त्य कहते हैं—कृपासिन्धु, दयासिन्धु, कृपापरवश भगवान् विष्णु ने यह कहकर चक्र द्वारा वह स्थान भेदन करके पातालमण्डल से जाह्नवी जल को प्रकट किया। उस विमल जल ने तत्काल वहां की भूमि को धूलिरहित कर दिया। हे द्विज! तभी से यह स्थान चक्रतीर्थ कहा जाने लगा। हे द्विज! यह शुभ चक्रतीर्थ त्रैलोक्य की पापराशि को ध्वस्त करने में समर्थ है। मानव यहां पर स्नान-दान करके विष्णुलोक गमन करता है। तदनन्तर द्विजों पर कृपालु भगवान् अच्युत कृपापरवश होकर पुनः विष्णुशर्मा से कहने लगे।।९५-९९।।

श्रीभगवानुवाच

त्वन्नामपूर्विकाविप्रमन्मूर्त्तिरिहतिष्ठतु। विष्णुहरीतिविख्याता मुक्तानांमुक्तिदायिनी।।१००।।

श्रीभगवान् कहते हैं—हे विप्र! मेरे नाम के पहले तुम्हारा नाम युक्त की गई मेरी मूर्त्ति यहां स्थापित हो। वह मूर्त्ति विष्णु हरि नाम से विख्यात होकर भक्तों को मुक्ति प्रदान करे।।१००।।

अगस्त्य उवाच

इतिश्रुत्वावचोविप्रोवासुदेवस्यबुद्धिमान्। स्वनामपूर्विकांमूर्तिंस्थापयामासचक्रिणः।।१०१।।
ततः प्रभृति विप्रेश! शङ्खचक्रगदाधरः। पीतवासाश्चतुर्बाहुर्नाम्नाविष्णुहरिः स्थितः।।१०२।।
कार्त्तिकेशुक्लपक्षस्यप्रारभ्यदशमीतिथिम्। पूर्णिमामवधिंकृत्वायात्रासाम्वत्सरीभवेत्।।१०३।।
चक्रतीर्थेनरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते। बहुवर्षसहस्त्राणि स्वर्गलोके महीयते।।१०४।।
पितृनुद्दिश्य यस्तत्र पिण्डान्निर्वापयिष्यति। तृप्तास्तु पितरो यान्ति विष्णुलोकं न संशयः।।१०५।।

चक्रतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा विष्णुहरिं विभुम्।
सर्वपापक्षयंप्राप्य नाकपृष्ठे महीयते॥१०६॥
स्वशक्त्या तत्र दानानि दत्त्वा निष्कल्मषो नरः।
विष्णुलोके वसेद्धीमान्यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥१०७॥
अन्यदाऽपि नरस्तत्र चक्रतीर्थे जितेन्द्रियः। दृष्ट्वा सकृद्धरिंदेवं सर्वपापैः प्रमुच्यते॥१०८॥
इति सकलगुणाब्धिर्ध्येयमूर्तिश्चिदात्मा हरिरिह परमूर्त्या तस्थिवान्मुक्तिहेतोः।
तमिह बहुलभक्त्या चक्रतीर्थाभिषेकी वसति सुकृतिमूर्त्तिर्योऽर्चयेद्विष्णुलोके॥१०९॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डेऽयोध्यामाहात्म्ये विष्णुहरिमाहात्म्यवर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः॥१॥

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—धीमान् विष्णुशर्मा ने वासुदेव का यह वचन सुनकर अपना नाम पूर्व में रखकर वहां चक्रधर श्रीहरि की प्रतिमा स्थापित किया। हे विप्रेन्द्र! तब से पीतवस्त्रधारी शंख-चक्र-गदाधारी चतुर्बाहु श्रीहरि वहां विष्णुहरि नामक होकर चक्रतीर्थ में स्थित हो गये। अब इस तीर्थ का यात्रा प्रकरण सुनो। कार्त्तिकमास की शुक्लादशमी तिथि के दिन से लेकर पूर्णिमा तक के बीच यात्रा करें। यह सांवत्सरी यात्रा कही गयी है। मानव चक्रतीर्थ में स्नान करके सर्वपाप रहित हो जाता है। वह अनेक सहस्त्र संवत्सर स्वर्गलोक में निवास करता है। जो मनुष्य पितरों के उद्देश्य से उस तीर्थ में पिण्डादि दान करता है, उसके पितृगण तृप्त होकर विष्णुलोक में गमन करते हैं। इसमें सन्देह नहीं है। मानव चक्रतीर्थ में स्नान तथा विष्णुहरि मूर्त्ति का दर्शन करके कलुषयुक्त होकर स्वर्गपुर में गमन करता है। धीमान् मानव इस तीर्थ में यथाशक्ति दान करके निष्पाप होकर चतुर्दश इन्द्रों के अधिकार काल तक विष्णुलोक में निवास करता है। इसके अतिरिक्त पूर्वोक्त यात्राकाल के बिना भी जितेन्द्रिय मानव चक्रतीर्थ में श्रीहरि का एक बार दर्शन करने मात्र से सभी पाप से मुक्त हो जाते हैं। निखिलगुण के सारस्वरूप ध्येय मूर्त्ति चिदात्मा हरि मानवगण की मुक्ति के लिये इस प्रकार की अत्युत्तम मूर्त्ति में यहां स्थित हैं। जो सुकृति मानव चक्रतीर्थ में अभिषेक करके अत्यन्त भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करते हैं, वे विष्णुलोक में निवास करता है।।१०१-१०९।।

।।प्रथम अध्याय समाप्त।।

द्वितीयोऽध्यायः

ब्रह्मकुण्ड-सहस्रधारा तीर्थवर्णन, पापमोचनतीर्थ माहात्म्य नागपूजन महत्ववर्णन

सूत उवाच

अगस्त्यमुनिरित्युक्त्वा चक्रतीर्थाश्रयां कथाम्। विभोर्विष्णुहरेऽश्चापि पुनराह द्विजोत्तमाः।।१।।

सूत जी कहते हैं—हे द्विजश्रेष्ठगण! ऋषि अगस्त्य ने यह कहा तथा पुनः विभु विष्णुहरि की चक्रतीर्थ विषयक कथा कहने लगे।।१।।

अगस्त्य उवाच

पुरा ब्रह्माजगत्स्त्रष्टाविज्ञायहरिमच्युतम्। अयोध्यावासिनंदेवंतत्रचक्रेस्थितिंस्वयम्।।२।।
आगत्यकृतवांस्तत्र यात्रां ब्रह्मायथाविधि। यज्ञञ्चविधिवच्चक्रेनानासम्भारसंयुतम्।।३।।
ततः स कृतवां स्तत्र ब्रह्मालोकपितामहः। कुण्डं स्वनाम्ना विपुलं नानादेवसमन्वितम्।।४।।
विस्तीर्णजलकल्लोलकलितं कलुषापहम्। कुमुदोत्पलकह्लारपुण्डरीककुलाकुलम्।।५।।
हंससारसचक्राह्वविहङ्गममनोहरम्। तटान्तविटपोल्लासिपतत्त्रिगणसङ्कुलम्।।६।।
तत्र कुण्डेसुराः सर्वेस्नाताःशुद्धिसमन्विताः। बभूवुरद्धा विगतरजस्काविमलत्विषः।।७।।
तदाश्चर्य्यं महद्दृष्ट्वा ते सर्वे सहसासुराः। ब्रह्माणम्प्रणिपत्योचुर्भक्त्या प्राञ्जलयस्तदा।।८।।

अगस्त्य कहते हैं—पूर्वकाल में जगत्स्त्रष्टा ब्रह्मा अच्युत हरि को अयोध्या में स्थित जानकर स्वयं उस चक्रतीर्थ में निवास कर रहे थे। वे यथाविधि यात्रा करके अयोध्या स्थित चक्रतीर्थ में आये तथा उन्होंने सविधि यज्ञ किया। उनके यज्ञ में नाना सामग्री लाई गयी। लोकपितामह ब्रह्मा ने अपने नाम के अनुसार नाना देव समन्वित एक बृहद् कुण्ड निर्मित करके यज्ञ किया। यह ब्रह्मकुण्ड कलुष का हरण करने वाला, विस्तीर्ण जलकल्लोल से आकुलित, कुमुद, उत्पल, कह्लार तथा पुण्डरीक समाकीर्ण था। यह कुण्ड हंस, सारस, चक्रवाक आदि अनेक पक्षीगण के विचरण के कारण अत्यन्त शोभा सम्पादित कर रहा था। कुण्ड के किनारे के वृक्ष नयन मनोहर पक्षियों से समाकुल होने के कारण अत्यन्त विचित्र शोभा धारण कर रहे थे। एक बार देवगण इस ब्रह्मकुण्ड में स्नात होकर सद्यः शुद्धियुक्त, विमल कान्तियुक्त तथा रजोहीन हो गये। उन्होंन सहसा यह महान् आश्चर्य वाली घटना को देखकर ब्रह्मा को प्रणाम किया तथा भक्तिपूर्वक करवद्ध होकर उनसे पूछा।।२-८।।

देवा ऊचुः

भगवन्ब्रूहि तत्त्वेन माहात्म्यंकमलासन। अस्य कुण्डस्यसकलंखातस्यविमलत्विषः।।९।।
अत्रस्नानेनसर्वेषामस्माकंविगतं रजः। महदाश्चर्यमेतस्य दृष्ट्वा कुण्डस्यविस्मिताः।
सर्वे वयं सुरश्रेष्ठ! कृपया त्वमतो वद।।१०।।

देवगण कहते हैं—हे भगवान्! कृपया आप इस विमल कान्तिवाले गंभीर जलयुक्त ब्रह्मकुण्ड का माहात्म्य यथार्थ से कहिये। हे कमलासन! इस कुण्ड में स्नानोपरान्त हमारा रजोगुण वाला भाव नष्ट हो गया! हम इस कुण्ड के प्रभाव का अवलोकन करके विस्मित हो रहे हैं। हे देवप्रवर! आप कृपया कृष्ण माहात्म्य का वर्णन करिये।।९-१०।।

ब्रह्मोवाच

श्रृण्वन्तु सर्वे त्रिदशाः! सावधानाः सविस्मयाः।
कुण्डस्यैतस्य माहात्म्यं नानाफलसमन्वितम्।।११।।
अत्रस्नानेनविधिवत्पापात्मानोऽपिजन्तवः। विमानंहंससंयुक्तमास्थायरुचिराम्बराः।
(अध्यासते) निवसन्ति ब्रह्मलोकं यावदाभूतसम्प्लवम्।।१२।।
अत्र दानेन होमेन यथाशक्त्या सुरोत्तमाः। तुलाश्वमेधयोःपुण्योप्राप्नुयुर्मुनिसत्तमाः।।१३।।
ममास्मिन्सरसिश्रीमाञ्जायतेस्नानतोनरः। तस्मादत्र विधानेनस्नानंदानंजपादिकम्।।१४।।
सर्वयज्ञसमंस्याद्वैमहापातकनाशनम्। ब्रह्मकुण्डमिति ख्यातिमितोयास्यत्यनुत्तमाम्।।१५।।
अस्मिन्कुण्डेचसान्निध्यंभविष्यतिसदामम्। कार्त्तिकेशुक्लपक्षस्यचतुर्दश्यांसुरोत्तमाः।।१६।।
यात्रा भविष्यति सदा सुराः! साम्वत्सरीमम्। शुभप्रदा महापापराशिनाशकरीतदा।।१७।।
स्वर्णञ्चैवसदादेयंवासांसिविविधानिच। निजशक्त्याप्रकर्तव्यासुरास्तृप्तिर्द्विजन्मनाम्।।१८।।

ब्रह्मा कहते हैं—हे सविस्मय देवगण! नानाफलयुक्त इस ब्रह्मकुण्ड का माहात्म्य सुनो। यदि पापात्मा प्राणीगण इस कुण्ड में सविधि स्नान करेंगे, तब वे सुन्दर वस्त्रधारी होकर हंसयुक्त विमानारूढ़ होकर ब्रह्मलोक गमन करेंगे तथा पुनः वहां प्रलयकाल तक निवास करेंगे। हे सुरोत्तमगण! ऋषिप्रवर लोग यहां पर यथासाध्य दान तथा होम करके अश्वमेध यज्ञफल लाभ करेंगे। मेरे इस सरोवर में स्नान करने वाला श्रीमान् हो जाता है। यहां मानव यथाविधि स्नान-दान-जपादि करके समस्त यज्ञ के तुल्य फल को तथा महापातकों के नाशरूपी स्थिति को प्राप्त करता है। आज से मेरा यह कुण्ड ब्रह्मकुण्ड नाम द्वारा अत्युत्तम प्रसिद्धि प्राप्त करेगा। मैं सतत् इस कुण्ड के साथ निवास करूंगा। हे सुरश्रेष्ठगण! कार्त्तिक शुक्लचतुर्दशी के दिन मेरी सांवत्सरी यात्रा होगी। हे देवगण! यह यात्रा शुभप्रद तथा महापापों का नाश करने वाली है। हे देवगण! इस यात्रा में देवगण की तृप्ति के लिये यथाशक्ति स्वर्ण तथा वस्त्र दान करना चाहिये।।११-१८।।

अगस्त्य उवाच

इत्युक्त्वा देवदेवोऽयं ब्रह्मा लोकपितामहः। अन्तर्दधे सुरैः सार्द्धं तीर्थं दृष्ट्वा तपोधन!।।१९।।
तदाप्रभृति तत्कुण्डंविख्यातंपरमम्भुवि। चक्रतीर्थाञ्चपूर्वस्यांदिशिकुण्डंस्थितंमहत्।।२०।।

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—तदनन्तर देवदेव लोकपितामह ब्रह्मा ने चक्रतीर्थ का दर्शन किया तथा देवगण के साथ वहां से अन्तर्हित् हो गये। हे तपोधन! तब से यह ब्रह्मकुण्ड पृथिवी पर विपुल रूप से प्रख्यात हो गया। यह कुण्ड चक्रतीर्थ के पूर्व की ओर स्थित है।।१९-२०।।

सूत उवाच

इत्युक्त्वा स तपोराशिरगस्त्यः कुम्भसम्भवः।
पुनः पृष्टो मुनिवरो व्यासायाऽवीवदत्कथाम्॥२१॥

सूत जी कहते हैं—कुंभ से उत्पन्न तपःराशि ऋषि अगस्त्य ने जब यह कहा, तब व्यासदेव के पूछे जाने पर उनसे इस प्रकार उत्तम कथा का वर्णन करने लगे।।२१।।

अगस्त्य उवाच

अन्यच्छृणु महाभाग! तीर्थंदुष्कृतिदुर्ल्लभम्। ऋणमोचनसञ्ज्ञन्तु सरयूतीरसङ्गतम्॥२२॥
ब्रह्मकुण्डान्मुनिवर! धनुःसप्तशतेन च। पूर्वोत्तरदिशाभागे संस्थितं सरयूजले॥२३॥
तत्र पूर्वं मुनिवरो लोमशोनाम नामतः। तीर्थयात्राप्रसङ्गेन स्नानञ्चक्रे विधानतः॥२४॥
ततः स ऋणनिर्मुक्तो बभूव गतकल्मषः। तदाश्चर्य्यं महद्दृष्ट्वा मुनीन्सानन्दमब्रवीत्॥२५॥
पश्यन्त्वेतस्यमहतोगुणांस्तीर्थवरस्य वै। भुजावूर्ध्वंतथाकृत्वाहर्षेणाऽऽहाश्रुलोचनः॥२६॥

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—हे महाभाग! अब पापनाशन अन्य तीर्थ माहात्म्य को सुनें। हे मुनिप्रवर! सरयू तट पर ऋणमोचन नामक एक तीर्थ है। यह तीर्थ सरयू जल के ही एक अंश से युक्त है। यह सरयूनदी के पूर्वत्तर की ओर ब्रह्मकुण्ड से ७०० धनुष दूरी पर विद्यमान है। ऋषिश्रेष्ठ लोमश तीर्थयात्रा करते हुये यहां आये तथा यहां स्नानोपरान्त पापरहित एवं ऋणत्रय से मुक्त हो गये। ऋषिप्रवर लोमश ने इस तीर्थ का महाविस्मयप्रद माहात्म्य देखकर आनन्द अश्रुपूरित हो मुनिगण से कहा था—"हे मुनिगण! आप सभी तीर्थप्रवर ऋणमोचन की महान् महिमा को देखिये।" तब लोमश ने हर्षपूर्वक ऋषियों के समक्ष ऊर्ध्वबाहु तथा अश्रुपूर्ण नेत्र से कहा।।२२-२६।।

लोमश उवाच

ऋणमोचनसञ्ज्ञन्तु तीर्थमेतदनुत्तमम्। यत्र स्नानेन जन्तूनामृणनिर्यातनम्भवेत्॥२७॥
ऐहिकं पारलौकिक्यं यदृणत्रितयं नृणाम्।
तत्सर्वं स्नानमात्रेण तीर्थेऽस्मिन्नश्यति क्षणात्॥२८॥
सर्वतीर्थोत्तमं चैतत्सद्यः प्रत्ययकारकम्। मया चाऽस्य फलं सम्यगनुभूतमृणादिह॥२९॥
तस्मादत्र विधानेनस्नानंदानञ्चशक्तितः। कर्त्तव्यंश्रद्धयायुक्तैःसर्वदाफलकाङ्क्षिभिः॥३०॥
स्नातव्यञ्च सुवर्णञ्च देयं वस्त्रादि शक्तिः॥३१॥

ऋषि लोमश कहते हैं—ऋणमोचन अत्युत्तम तीर्थ है। यहां स्नान करने से मनुष्य क्षणकाल में ही ऐहिक तथा पारलौकिक आदि त्रिविध ऋणों से और अन्य सभी ऋणों से मुक्त हो जाता है। ऋणमोचन सर्वतीर्थसमूह से उत्तम तथा प्रत्यक्ष फलप्रद है। मैं इस तीर्थ में स्नान द्वारा ऋणमुक्त हो गया। अतः फलेच्छु मनुष्य इस तीर्थ में शक्ति के अनुसार सदा यथाविधि श्रद्धा के अनुरूप स्नान तथा दानादि सम्पन्न करे। मानव इस तीर्थ में स्नान करके यथाशक्ति स्वर्ण तथा वस्त्र दान करे।।२७-३१।।

अगस्त्य उवाच

इत्युक्त्वा तीर्थमाहात्म्यं लोमशो मुनिसत्तमः। अन्तर्दधे मुनिश्रेष्ठः स्तुवंस्तीर्थगुणान्मुदा॥३२॥
इत्येतत्कथितं विप्र! ऋण्णमोचनसञ्ज्ञकम्। यत्रस्नानेनजन्तूनामृणंनश्यपतितत्क्षणात्।
ऋणमोचनतीर्थन्तु पूर्वतः सरयूजले॥३३॥
धनुर्द्विशत्या तीर्थञ्च पापमोचनसञ्ज्ञकम्। सर्वपापविशुद्धात्मा तत्र स्नानेन मानवः।
जायते तत्क्षणादेव नाऽत्र कार्या विचारणा॥३४॥
मया तत्र मुनिश्रेष्ठ! दृष्टं माहात्म्यमुत्तमम्॥३५॥
पाञ्चालदेशसम्भूतो नाम्ना नरहरिर्द्विजः। असत्सङ्गप्रभावेण पापात्मा समजायत॥३६॥
नानाविधानि पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च। कृतवान्पापिसङ्गेनत्रयीमार्गविनिन्दकः॥३७॥
स कदाचित्साधुसङ्गात्तीर्थयात्राप्रसङ्गतः। अयोध्यामागतोविप्र! महापातककृद्द्विजः॥३८॥
पापमोचनतीर्थेतुस्नातःसत्सङ्गतोद्विजः। पापराशिर्विनष्टोऽस्यनिष्पापःसमभूत्क्षणात्॥३९॥
दिवः पपात तन्मूर्ध्नि पुष्पवृष्टिर्मुनीश्वर। दिव्यं विमानमारुह्यविष्णुलोकेगतोद्विजः॥४०॥

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—ऋषिसत्तम लोमश हर्षपूर्वक यह तीर्थमहिमा कहकर स्तव करते-करते अन्तर्ध्यान हो गये। हे विप्र! मैंने तुमसे ऋणमोचन तीर्थ का प्रसंग कहा। मानवगण यहां स्नान करके सदैव ऋणरहित हो जाते हैं। ऋणमोचन तीर्थ से पूर्व की ओर २०० धनुष की दूरी पर सरयूजल में ही पापमोचन तीर्थ स्थित है। मानव यहां स्नान करके तत्काल पापरहित एवं विशुद्धात्मा हो जाते हैं। इसमें संशय नहीं है। हे मुनिप्रवर! मैं इस पापमोचन तीर्थ का एक अत्युत्तम माहात्म्य कहता हूं। पाञ्चालदेश में नरहरि नामक द्विज का निवास था। वे दुष्टसंग के कारण पापी हो गये। कुसंसर्ग प्राप्त होने के कारण वेदों में विगर्हित कहे गये ब्रह्महत्यादि नाना पापाचरण उन्होंने किया। हे विप्र! तदनन्तर साधुगण जब तीर्थयात्रा के लिये वहां से चले, तब यह महापापी ब्राह्मण भी उनके साथ अयोध्या पहुंचा। उसने उन सबके साथ में ही पापमोचन में स्नान भी किया। हे मुनिप्रवर! वह ब्राह्मण पापमोचन तीर्थ में स्नान करने से ही निष्पाप हो गया। उसकी पापराशि का नाश हो गया। उसके मस्तक पर आकाश से पुष्पवर्षा होने लगी। वह दिव्य विमानारूढ़ होकर श्रीहरि के लोक चला गया।।३२-४०।।

तद्दृष्ट्वामहदाश्चर्यं मया च द्विजपुङ्गव!। श्रद्धया परयातत्र कृतं स्नानं विशेषतः॥४१॥
माघकृष्णचतुर्दश्यां तत्र स्नानं विशेषतः। दानञ्च मनुजैः कार्य्यं सर्वपापविशुद्धये॥४२॥
अन्यदा तु कृते स्नाने सर्वपापक्षयो भवेत्॥४३॥
पापमोचनतीर्थे तुपूर्वन्तु सरयूजले। धनुः शतप्रमाणेन वर्त्तते तीर्थमुत्तमम्॥४४॥
सहस्त्रधारासञ्ज्ञन्तु सर्वकिल्बिषनाशनम्। यस्मिन्रामाज्ञया वीरो लक्ष्मणः परवीरहा।
प्राणानुत्सृज्य योगेन ययौ शेषात्मतां पुरा॥४५॥
सार्द्धहस्तत्रयेणैव प्रमाणं धनुषो विदुः। चतुर्भिर्हस्तकैः संख्यादण्डइत्यभिधीयते॥४६॥

हे द्विजश्रेष्ठ! मैंने भी यह महान् विस्मयप्रद घटना देखकर अतिशय श्रद्धापूर्वक पापविमोचन में स्नान किया। मनुष्य पापमुक्ति हेतु माघमास में कृष्णचतुर्दशी के दिन इस तीर्थ में स्नान तथा विशेष दान अवश्य करे। इस चतुर्दशी के अतिरिक्त अन्य समय में भी पापमोचन में स्नान करने वाले का सभी पाप क्षयीभूत हो जाता है। पापमोचन के पूर्व की ओर १०० धनुष की दूरी पर सरयू जल में एक उत्तम तीर्थ है। इसका नाम है सहस्रधारा! यह सहस्रधारा सर्वपापनाशक है। पूर्वकाल में परवीर नाशक लक्ष्मण ने श्रीराम के आदेश से योगबल द्वारा इस सहस्रधारा में प्राण त्याग करके परलोक गमन किया। हे साधु! एक धनुष साढ़ी तीन हाथ का होता है। चार हाथ का एक दण्ड कहा गया है।।४१-४६।।

सूत उवाच

इत्थंतदासमाकर्ण्यकुम्भयोनिमुनेस्तदा। कृष्णद्वैपायनोव्यासःपुनःपप्रच्छकौतुकात्।।४७।।

सूत जी कहते हैं—कृष्ण द्वैपायन व्यास ने कुंभ से उत्पन्न ऋषि अगस्त्य से यह सुनकर कौतुक पूर्वक पुनः प्रश्न किया।।४७।।

व्यास उवाच

सहस्रधारामाहात्म्यंविस्तराद्वद सुव्रत!। शृण्वंस्तीर्थस्य माहात्म्यंनतृप्यतिमनोमम।।४८।।

महर्षि व्यासदेव कहते हैं—हे सुव्रत! सहस्रधार का माहात्म्य विस्तृत रूप से कहिये। सहस्रधार का माहात्म्य सुनने से मुझे तृप्ति नहीं हो रही है।।४८।।

अगस्त्य उवाच

सावधानः शृणु मुने! कथां कथयतो मम। सहस्रधारातीर्थस्य समुत्पत्तिंमहोदयात्।।४९।।
पुरा रामो रघुपतिर्देवकार्यं विधायवै। कालेन सह सङ्गम्य मन्त्रं चक्रे नरेश्वरः।।५०।।
आवां मन्त्रयमाणौ हि यः पश्येदन्तिकागतः।
मया त्याज्यो भवेत्क्षिप्रमित्थं चक्रे स सम्विदम्।।५१।।
तस्मिन्मन्त्रयमाणेहिद्वारेतिष्ठतिलक्ष्मणे। आगतःसतपोराशिर्दुर्वासास्तेजसांनिधिः।।५२।।
आगत्य लक्ष्मणं शीघ्रं प्रीत्योवाच क्षुधाऽऽकुलः।।५३।।

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—हे मुनिवर! मैं पुनः इस तीर्थ की उत्पत्ति का वर्णन करता हूं। इसका माहात्म्य अतीव प्रभावपूर्ण है। अतएव सावधानीपूर्वक श्रवण करें। पूर्वकाल में रघुपति नरेश्वर श्रीराम देवकार्य का उद्धार करके काल के साथ मन्त्रणा कर रहे थे। इस मन्त्रणा के पूर्व श्रीराम ने प्रतिज्ञा किया था कि "जो मन्त्रणा काल में यहां आकर इस मन्त्रणा को देख लेगा, मैं तत्काल उसका त्याग करूंगा।" श्रीराम यह प्रतिज्ञा करने के पश्चात् मन्त्रणागृह गये तथा वहां मन्त्रणा में प्रवृत्त हो गये। तब लक्ष्मण द्वार रक्षण कार्य कर रहे थे। उसी समय तेजपुञ्ज तपोराशि महर्षि दुर्वासा वहां आये। वे क्षुधार्त्त थे। वे द्वार पर आकर प्रेम के कारण तत्क्षण लक्ष्मण से कहने लगे।।४९-५३।।

दुर्वासा उवाच

सौमित्रे! गच्छ शीघ्रं त्वं रामाग्रे मां निवेदय।
कार्यार्थिनमिदं वाक्यं नाऽन्यथा कर्तुमर्हसि।।५४।।

महर्षि दुर्वासा कहते हैं—"हे सुमित्रानन्दन! तुम शीघ्र राम के पास जाकर मेरे आगमन वृत्तान्त को उनसे कहो। हे लक्ष्मण! मेरे आगमन का विशेष प्रयोजन है। इसलिये इसके विपरीत करना तुम्हारे लिये उचित नहीं है।"।।५४।।

अगस्त्य उवाच

शापाद्भीतः स सौमित्रिर्द्रुतं गत्वातयोः पुरः। मुनिंनिवेदयामासरामाग्रेदर्शनार्थिनम्।
दुर्वाससं तपोराशिमत्रिनन्दनमागतम्॥५५॥
रामोऽपि कालमामन्त्र्यप्रस्थाप्यचबहिर्ययौ। दृष्ट्वा मुनिंतंप्रणतःसम्भोज्यप्रभुरादरात्॥५६॥
दुर्वाससं मुनिवरं प्रस्थाप्य स्वयमादरात्। सत्यभङ्गभयाद्वीरो लक्ष्मणं त्यक्तवांस्तदा॥५७॥
लक्ष्मणोऽपि तदा वीरः कुर्वन्नवितथं वचः। भ्रातुर्ज्येष्ठस्य सुमतिः सरयूतीरमाययौ॥५८॥
तत्र गत्वाऽथ च स्नात्वा ध्यानमास्थाय सत्वरम्।
चिदात्मनि मनः शान्तं सङ्गम्याऽवस्थितस्तदा॥५९॥
ततः प्रादुरभूत्तत्र सहस्त्रफणमण्डितः। शेषश्चक्षुःश्रवाः श्रेष्ठः क्षितिं भित्त्वासहस्त्रधा।
सुरलोकात्सुरेन्द्रोऽपि समागादमरैः सह॥६०॥
ततः शेषात्मतां यातं लक्ष्मणं सत्यसङ्गरम्। उवाचमधुरं शक्रःसुराणांतत्रपश्यताम्॥६१॥

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—लक्ष्मण दुर्वासा के शापभय से शंकित होकर शीघ्र वहां से जाकर रामचन्द्र के समक्ष खड़े हो गये तथा उनसे कहा कि "अत्रिपुत्र तपोराशि ऋषि दुर्वासा आपके दर्शनार्थ आये हैं।" प्रभु राम ने भी लक्ष्मण का कथन सुनकर काल को विदा किया तथा बाहर आकर महर्षि दुर्वासा का दर्शन किया और उनके चरणों में प्रणत हो गये। श्रीराम ने नाना वस्तुओं द्वारा उनको भोजन कराया तथा विदा किया। तदनन्तर वीर राम ने वचन भंग के भय से लक्ष्मण का वर्जन किया। वीर लक्ष्मण ने भी ज्येष्ठ भ्राता के वाक्य का उल्लंघन किया था, अतः वे शीघ्रतापूर्वक सरयू तट पहुंचे। उन्होंने वहां स्नान किया तथा ध्यानस्थ हो गये। उन्होंने चिदात्मा में मन को समाहित करके वहां अवस्थान किया। तदनन्तर वहां सहस्त्रफणयुक्त चक्षुःस्त्रवा सर्पराज अनंत पृथिवी का भेदन करके प्रकट हो गये। तभी देवलोक से इन्द्र भी देवगण के साथ वहां आये। तदनन्तर इन्द्र ने सभी देवगण के समक्ष शेषरूप प्राप्त सत्यसंगर लक्ष्मण से मधुर वाणी में कहा।।५५-६१।।

इन्द्र उवाच

लक्ष्मणोत्तिष्ठ शीघ्रंत्वमारोह स्वपदं स्वकम्। देवकार्यं कृतं वीर! त्वया रिपुनिषूदन॥६२॥
वैष्णवंपरमंस्थानंप्राप्नुहित्वंसनातनम्। भवन्मूर्तिःसमायातः शेषोऽपिविलसत्फणः॥६३॥
सहस्त्रधाक्षितिंभित्त्वासहस्त्रफणमण्डलैः। क्षितेःसहस्त्रच्छिद्रेषुयस्माद्भित्त्वासमुद्गताः॥६४॥
फणसाहस्त्रमणिभिर्दग्धाः शेषस्य सुव्रत!। तस्मादेतन्महातीर्थं सरयूतीरगं शुभम्।
ख्यातं सहस्त्रधारेति भविष्यति न संशयः॥६५॥
एतत्क्षेत्रप्रमाणं तु धनुषां पञ्चविंशतिः। अत्र स्नानेन दानेन श्राद्धेन श्रद्धयान्वितः।
सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोकं व्रजेन्नरः॥६६॥

अत्र स्नातो नरो धीमाञ्छेषं सम्पूज्य चाऽव्ययम्।
तीर्थं सम्पूज्य विधिवद्विष्णुलोकमवाप्नुयात्॥६७॥
तस्मादत्र प्रकर्तव्यंस्नानं विधिपुरःसरम्। शेषरूपाहिवद्धयेयाःपूज्याविप्राविशेषतः॥६८॥
स्वर्णं चान्नंचवासांसिदेयानिश्रद्धयान्वितैः। स्नानं दानं हरेः पूजासर्वमक्षयतां व्रजेत्॥६९॥

इन्द्र कहते हैं—हे वीर! आप ने शत्रु समूह का वध करके देवकार्य सम्पन्न किया। हे लक्ष्मण! अब आप उठकर अपने पद में प्रवेश करिये। आपको अत्युत्तम सनातन वैष्णव स्थान लाभ हो। हे सुव्रत! आपकी मूर्त्ति अनन्त सहस्रफण फैलाकर यहां आये हैं। वे सहस्रफणमण्डल द्वारा पृथिवी का भेद करके आये हैं। उनकी फण की मणि से यह सहस्र छिद्रपथ (सहस्रफण द्वारा भूमिभेदन से बना) दग्ध हो रहा है। इसलिये आज से सरयूतीरस्थ यह सुशोभन महातीर्थ सहस्रधार नाम से प्रसिद्ध होगा। इस क्षेत्र का माप है पच्चीस धनुष। यहां पर श्रद्धापूर्वक स्नान, दान तथा पितृश्राद्ध करने से मानव समस्त कलुष रहित होकर हरिधाम में जाता है। जो बुद्धिमान मानव सहस्रधार में स्नान करके यथाविधि शेषनाग अनन्त की तथा तीर्थपूजा करता है, उसे विष्णुलोक की प्राप्ति होती है। अतः सभी इस तीर्थ में सविधि स्नानादि करें। श्रद्धालु मानव इस तीर्थ में ब्राह्मणों में शेषनाग की भावना करके उनका पूजन करें। उनको स्वर्ण-अन्न तथा वस्त्र दान करें। यहां स्नान, दान तथा हरिपूजन करने से वह सब अक्षय हो जाता है।।६२-६९।

तस्मादेतन्महातीर्थं सर्वकामफलप्रदम्। क्षितौ भविष्यति सदामात्रकार्याविचारणा॥७०॥
श्रावणे शुक्लपक्षस्य या तिथिः पञ्चमीभवेत्। तस्मादत्रप्रकर्त्तव्योनागानुद्दिश्ययत्नतः॥७१॥
उत्सवो विपुलः सद्भिः शेषपूजापुरःसरम्। उत्सवे तु कृते तत्र तीर्थेमहति मानवैः॥७२॥
सन्तोष्य च द्विजान्भक्त्या नागपूजापुरस्सरम्।
सन्तुष्टाः फणिनः सर्वे पीडयन्ति न मानुषान्॥७३॥
वैशाखमासे ये स्नानं कुर्वन्त्यत्र समाहिताः। न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि॥७४॥
तस्मादत्र प्रकर्तव्यं माधवे यत्नतो नरैः। स्नानं दानं हरिःपूज्यो ब्राह्मणाश्च विशेषतः।
तीर्थे कृतेऽत्र मनुजैः सर्वकामफलप्रदः॥७५॥

पृथिवी पर सहस्रधार महातीर्थ सर्वकाम फल प्रदायक गण्य होगा। इसमें सन्देह नहीं है। श्रावण शुक्ला पञ्चमी के दिन साधुगण शेषनाग की पूजा करके नागगण के लिये यहां यत्नपूर्वक उत्सव करें। तब मानवगण द्वारा यहां नागोत्सव करने से तथा भक्तिपूर्वक नागपूजन एवं ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करने से फणधारी नाग प्रसन्न होते हैं। वे उस मनुष्य को पीड़ित नहीं करते। जो समाहित होकर वैशाखमास में यहां स्नान करता है, कोटिकल्पपर्यन्त उसका पुनर्जन्म नहीं होता। पुण्य समाप्त नहीं होता। अतः वैशाखमास में मनुष्य इस तीर्थ में यत्नतः स्नान-दान तथा हरि एवं द्विजगण का पूजन करें। जो मानव ऐसा अनुष्ठान करता है, उसकी सर्वकामना सम्पन्न हो जाती है।।७०-७५।।

विष्णुमुद्दिश्ययोदद्यात्सालङ्कारांपयस्विनीम्। सवत्सामत्रसत्तीर्थेसत्पात्रायद्विजन्मने॥७६॥
तस्य वासो भवेन्नित्यं विष्णुलोके सनातने। अक्षयंस्वर्गमाप्नोतितीर्थस्नानेनमानवः॥७७॥

अत्र पूज्यौ विशेषेण नरैः श्रद्धासमन्वितैः। वैशाखे मास्यलङ्कारैर्वस्त्रैश्चद्विजदम्पती॥७८॥
लक्ष्मीनारायणप्रीत्यै लक्ष्मीप्राप्त्यै विशेषतः। वैशाखेमासि तीर्थानि पृथिवीसंस्थितानि वै॥७९॥
सर्वाण्यपि चसङ्गत्यस्थास्यन्त्यत्रनसंशयः। तस्मादत्रविशेषेणवैशाखेस्नानतोनृणाम्।
सर्वतीर्थावगाहस्य भविष्यति फलं महत्॥८०॥

जो मानव इस अत्युत्तम तीर्थ में विष्णु के उद्देश्य से योग्य पात्र ब्राह्मण को अलंकृत, दुग्धवती, सवत्सा धेनु प्रदान करता है, उसका निवास सदा सनातन विष्णुलोक में ही होगा। मनुष्य इस तीर्थ में स्नान द्वारा अक्षय स्वर्गलाभ करते हैं। विशेषतः इस तीर्थ में वैशाखमास में सश्रद्ध भाव से लक्ष्मी-नारायण की प्रसन्नतार्थ माला एवं अलंकार से द्विज दम्पति की पूजा करनी चाहिये। इस कार्य से व्यक्ति लक्ष्मीलाभ करता है। वैशाखमास में पृथिवी के सभी तीर्थ सहस्त्रधार में आ जाते हैं। यहीं वे मासपर्यन्त रहते हैं। इसमें सन्देह नहीं है। इसलिये यहां वैशाखस्नान मानव के लिये प्रशस्त है। इस तीर्थ में वैशाख स्नान द्वारा ही फललाभ होता है।।७६-८०।।

अगस्त्य उवाच

इत्युक्त्वा मुनिराजेन्द्रो लक्ष्मणं सुरसङ्गतम्। शेषं संस्थाप्यतत्तीर्थे भूभारहरणक्षमम्।
लक्ष्मणं यानमारोप्य प्रतस्थे दिवमादरात्॥८१॥
तदाप्रभृति तत्तीर्थंविख्यातिंपरमां ययौ। वैशाखेमासितीर्थस्यमाहात्म्यंपरमंस्मृतम्॥८२॥
पञ्चम्यामपि शुक्लायां श्रावणस्य विशेषतः। अन्यदापर्वणि श्रेष्ठंविशेषंस्नानमाचरेत्।
सहस्त्रधारातीर्थे च नरः स्वर्गमवाप्नुयात्॥८३॥
विधिवदिह हि धीमान्स्नानदानानितीर्थेनरवर! इह शक्त्या यः करोत्यादरेण॥८४॥
स इह विपुलभोगान्निर्मलात्मा च भक्त्या भजति भुजगशायिश्रीपतेरात्मनैक्यम्॥८५॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डेऽयोध्यामाहात्म्ये ब्रह्मकुण्डस-
हस्त्रधारातीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम द्वितीयोऽध्यायः।।२।।

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—हे मुनिप्रवर! देवराज इन्द्र ने लक्ष्मण से यह देवोचित वाक्य कहा तथा भूभार का हरण करने में सक्षम शेषनाग को इस तीर्थ में प्रतिष्ठित किया तथा लक्ष्मण को विमान में आरूढ़ कराया तथा देवलोक चले गये। तब से यह तीर्थ अत्यन्त प्रसिद्ध हो गया। वैशाखमास में इस तीर्थ का माहात्म्य सर्वाधिक होता है। विशेषतः श्रावण मास की पञ्चमी के दिन इसकी महिमा अत्यधिक रहती है। इसके अतिरिक्त अन्य समय में भी पर्वो के समय यहां स्नान करने वाला देवलोक प्राप्त करता है। जो धीमान् नरश्रेष्ठ आदरपूर्वक इस तीर्थ में श्रद्धा-भक्ति के साथ यथाविधान स्नान तथा दान देते हैं, वे निर्मलात्मा होकर इस लोक में नाना भोगों का उपभोग करते हैं। तदनन्तर देहान्त होने पर शेषशायी रमापति का सायुज्य लाभ करते हैं।।८१-८५।।

।।द्वितीय अध्याय समाप्त।।

तृतीयोऽध्यायः

चन्द्रसहस्त्रव्रतोद्यापन वर्णन, चन्द्र-हरिवृत्त वर्णन

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वचो धीमानादरात्कुम्भजन्मनः। प्रोवाचमधुरंवाक्यंकृष्णद्वैपायनोमुनिः॥१॥

सूत जी कहते हैं—कृष्ण द्वैपायन धीमान् ऋषि व्यास कुरुक्षेत्र में अगस्त्य से यह सुनकर उनसे मधुर वाक्य में कहने लगे।।१।।

व्यास उवाच

भगवन्नद्भुतमिदं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम्। श्रुत्वा त्वत्तो मम मनः परमानन्दमाययौ॥२॥

अन्यत्तीर्थवरं ब्रूहि तत्त्वेन मम शृण्वतः। न तृप्तिरस्ति मनसः शृण्वतो मम सुव्रत!॥३॥

महर्षि व्यास कहते हैं—हे भगवान्! यह तीर्थ माहात्म्य अत्यन्त अद्‌भुद् तथा उत्तम है। आपके मुख से यह सब सुनकर मेरा मन परम आनन्दित हो रहा है। हे सुव्रत! तीर्थ माहात्म्य और सुनने को मेरी इच्छा हो रही है। मैं इसे जितना ही सुनता हूं, मेरी श्रवणेच्छा उतनी ही बढ़ती जा रही है। इसलिये अब मुझसे अन्य तीर्थों का वर्णन करे।।२-३।।

अगस्त्य उवाच

शृणु विप्र! प्रवक्ष्यामि तीर्थमन्यदनुत्तमम्। स्वर्गद्वारमिति ख्यातं सर्वपापहरं सदा॥४॥

स्वर्गद्वारस्य माहात्म्यं विस्ताराद्वक्तुमीश्वरः। नहि कश्चिदतो वत्स! सङ्क्षेपाच्छृणु सुव्रत!॥५॥

सहस्त्रधारामारभ्य पूर्वतः सरयूजले। षट्त्रिंशदधिका प्रोक्ता धनुषां षट्शती मितिः॥६॥

स्वर्गद्वारस्य विस्तारः पुराणज्ञैर्विशारदैः। स्वर्गद्वारसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति॥७॥

सत्यंसत्यंपुनः सत्यं नासत्यं ममभाषितम्। स्वर्गद्वारसमंतीर्थंनास्तिब्रह्माण्डगोलके॥८॥

हित्वा दिव्यानि भौमानि तीर्थानि सकलान्यपि।
प्रातरागत्य तिष्ठन्ति तत्र संश्रित्य सुव्रत!॥९॥

तस्मादत्र प्रकर्तव्यं प्रातःस्नानं विशेषतः। सर्वतीर्थावगाहस्य फलमात्मनः ईप्सता॥१०॥

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—हे विप्र! सतत् सर्वपापहारी स्वर्गद्वार नामक एक अन्य अत्युत्तम तीर्थ का वर्णन सुनें। हे वत्स सुव्रत! स्वर्गद्वार का माहात्म्य कोई भी विस्तृत रूप से नहीं कह सकता! इसलिये मैं संक्षिप्त वर्णन करता हूं। यह स्वर्गद्वार सहस्त्रधार से पूर्व की ओर ६३६ धनुष की दूरी पर स्थित है। यह सरयू जल में विराजमान है। पुराणवेत्ता विद्वानों के अनुसार इसका विस्तार इसी प्रकार से निरूपित कर गये हैं। स्वर्गद्वार जैसा तीर्थ न तो कोई होगा, न तो है! यह मैं तीन बार कहता हूं। मेरा वाक्य कभी मिथ्या नहीं होता। हे सुव्रत! ब्रह्माण्ड गोलक में स्वर्गद्वार जैसा अन्य तीर्थ है ही नहीं। पृथिवी के तथा दिव्यलोक के सभी तीर्थ अपना-अपना

स्थान छोड़कर प्रातःकाल स्वर्गद्वार आते हैं। जो सर्वतीर्थफल (एक ही स्थान पर) चाहते हैं, वे स्वर्गद्वार तीर्थ में प्रातः स्नान करें।।४-१०।।

त्यजन्ति प्राणिनः प्राणान्स्वर्गद्वारान्तरेद्विज!।
प्रयान्ति परमं स्थानं विष्णोस्तेनाऽत्र संशयः॥११॥
मुक्तिद्वारमिदं पश्यस्वर्गप्राप्तिकरंनृणाम्। स्वर्गद्वारमितिख्यातंतस्मात्तीर्थमनुत्तमम्॥१२॥
स्वर्गद्वारंसुदुष्प्राप्यं देवैरपि न संशयः। यद्यत्कामयतें तत्र तत्तदाप्नोति मानवः॥१३॥
स्वर्गद्वारे परा सिद्धिः स्वर्गद्वारे परागतिः। जप्तं दत्तं हुतं दृष्टं तप्तस्तप्तंकृतञ्चयत्।
ध्यानमध्ययनं सर्वं दानं भवतिचाऽक्षयम्॥१४॥
जन्मान्तरसहस्त्रेण यत्पापं पूर्वसञ्चितम्। स्वर्गद्वारप्रविष्टस्य तत्सर्वं व्रजति क्षयम्॥१५॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वै वर्णसङ्कराः।
कृमिम्लेच्छाश्च ये चाऽन्ये सङ्कीर्णाः पापयोनयः॥१६॥
कीटाः पिपीलिकाश्चैवयेचान्येमृगपक्षिणः। कालेन निधनं प्राप्ताःस्वर्गद्वारेशृणुद्विज॥१७॥
कौमोदकीकराः सर्वे पक्षिणो गरुडध्वजाः। शुभेविष्णुपुरेविष्णुर्जायन्तेतत्रमानवाः॥१८॥
अकामो वा सकामो वा अपि तीर्थगतोऽपि वा।
स्वर्गद्वारे त्यजन्प्राणान्विष्णुलोके महीयते॥१९॥

हे द्विज! जो प्राणी स्वर्गद्वार में प्राण त्याग करते हैं, वे हरि के परमस्थान में गमन करते हैं। यह स्वर्गद्वार ही मानवगण की मुक्ति का द्वार है। तभी यह स्वर्गद्वार संज्ञा से कहा जाता है तथा तीर्थों में यह प्रसिद्ध है। यह देवताओं के लिये भी दुष्प्राप्य है। मनुष्य यहां पर जो भी कामना करता है, वह सब उसे प्राप्त हो जाती है। स्वर्गद्वार में उत्तम सिद्धि तथा परमगति लाभ होता है। यहां जप, दान, दर्शन, तपःश्चरण, ध्यान तथा अध्ययन प्रभृति जो कुछ किया जाता है, वह सब अक्षय हो जाता है। हजारों जन्मों से भी जो पाप संचित होते जा रहे हैं, स्वर्गद्वार में प्रवेश करते ही सब क्षयीभूत हो जाते हैं। हे द्विज! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य वर्णसंकर, संकीर्णमना पापयोनि वाले म्लेच्छ, कृमि, कीट, चींटी, अन्य मृग तथा पक्षी भी स्वर्गद्वार में यथाकाल प्राणत्याग करके जो फल लाभ करते हैं, उसे सुनें। वे गदाधारी तथा गरुड़ारूढ़ होकर सुशोभन विष्णुपुर में विष्णुरूपेण विराजित हो जाते हैं। निष्काम, सकाम, तीर्थयात्री चाहे जो हो, वह सब स्वर्गद्वार में प्राण त्याग करके विष्णुलोक गमन करते हैं।।११-१९।।

मुनयो देवताः सिद्धाः साध्या यक्षा मरुद्गणाः। यज्ञोपवीतमात्रेणविभागञ्चक्रिरेतुये॥२०॥
मध्याह्नेऽत्र प्रकुर्वन्तिसान्निध्यंदेवतागणाः। तस्मात्तत्रप्रकुर्वन्तिमध्याह्नेस्नानमादरात्॥२१॥
कुर्वन्त्यनशनं ये तु स्वर्गद्वारे जितेन्द्रियाः। प्रयान्ति परमंस्थानंयेचमासोपवासिनः॥२२॥
अन्नदानरता ये च रत्नदा भूमिदा नराः। गोवस्त्रदाश्च विप्रेभ्यो यान्ति ते भवनं हरेः॥२३॥

देवता, मुनि, सिद्ध, साध्य, यक्ष, मरुद्गण स्वर्गद्वार में आते हैं तथा यहां के यज्ञोपवीत के माप के

स्थान को आपस में प्रत्येक बांटकर उसे अपने-अपने तीर्थरूपेण स्थापित करते हैं। देवता यहां मध्याह्न में आते हैं, इसलिये यहां आदरपूर्वक आकर स्नान करना चाहिये। जो इन्द्रियजित् मानव स्वर्गद्वार में अनशन व्रत किंवा मासोपवास करता है, उसे उत्तम स्थान में गतिलाभ हो जाता है। अन्नदानरत, रत्नप्रद, भूमिदाता तथा जो विप्रगण को सहस्र गोदान करता है, वह हरिपुर गमन करता है।।२०-२३।।

यत्र सिद्धा महात्मानोमुनयः पितरस्तथा। स्वर्गंप्रयान्तितेसर्वेस्वर्गद्वारंततःस्मृतम्।।२४।।
चतुर्द्धाच तनुं कृत्वादेवदेवो हरिःस्वयम्। अत्र वै रमते नित्यं भ्रातृभिः सह राघवः।।२५।।
ब्रह्मलोकं परित्यज्य चतुर्वक्त्रः सनातनः। अत्रैवरमते नित्यं देवैः सह पितामहः।।२६।।
कैलासनिलयावासी शिवस्तत्रैव संस्थितः।।२७।।

वहां से सिद्ध-मुनि-महात्मा-पितृगण स्वर्ग जाते हैं, तभी उस स्थान का नाम स्वर्गद्वार हो गया। स्वयं राघवरूपी देवाधिदेव श्रीहरि अपने शरीर को चार भाग में विभक्त करके (राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न) अपने भ्रातागण के साथ निवास करते हैं। पितामह सनातन ब्रह्मदेव भी ब्रह्मलोक से आकर देवगण के साथ यहां पर सदा अवस्थित रहते हैं। यहां कैलाशवासी शिव भी सतत् विराजित करते हैं।।२४-२७।।

मेरुमन्दरमात्रोऽपि राशिः पापस्य कर्मणः। स्वर्गद्वारंसमासाद्यससर्वोव्रजतिक्षयम्।।२८।।
या गतिर्ज्ञानतपसां या गतिर्यज्ञयाजिनाम्। स्वर्गद्वारे मृतानांतु सागतिर्विहिताशुभा।।२९।।
ऋषिदेवासुरगणैर्जपहोमपरायणैः। यतिभिर्मोक्षकामैश्च स्वर्गद्वारो निषेव्यते।।३०।।
षष्टिवर्षसहस्राणि काशीवासेषु यत्फलम्। तत्फलं निमिषार्द्धेन कलौदाशरथींपुरीम्।।३१।।
यागतिर्योगयुक्तानांवाराणास्यांतनुत्यजाम्। सा गतिःस्नानमात्रेणसरय्वांहरिवासरे।।३२।।
स्वर्गद्वारे मृतः कश्चिन्नरकं नैव पश्यति। केशवानुगृहीता हि सर्वे यान्ति परांगतिम्।।३३।।
भूलोके चाऽन्तरिक्षे च दिवि तीर्थानि यानि वै।
अतीत्य वर्तते तानि तीर्थान्येतद् द्विजोत्तम!।।३४।।

इस स्वर्गद्वार में आकर मानवगण की मेरु पर्वत तथा मन्दर पर्वत जैसी पापराशि का भी नाश हो जाता है। समस्त ज्ञान, तप तथा यज्ञ से जो गतिलाभ होता है, स्वर्गद्वार में मृत होने पर मानव वैसी ही शुभावहा गति का लाभ करता है। ऋषि, देवता, असुर, यति तथा मोक्षकामी लोग जपहोमपरायण होकर इस स्वर्गद्वार की सेवा करते हैं। ६०००० वर्ष काशीवास का जो फल मिलता है, कलि में लोग दाशरथीपुरी अयोध्या में स्थित स्वर्गद्वार में आधे क्षण में प्राप्त कर लेते हैं। वाराणसी में देहत्याग करने वाले योगीगण की जो गति होती है, वह एकादशी के दिन सरयूजल में स्नान करने वालों को मिल जाती है। स्वर्गद्वार में प्राणत्याग करके कोई भी नरक गमन नहीं करता। सभी केशव की कृपा पाकर उत्तम गति लाभ करते हैं। हे द्विजोत्तम! भूलोक, अन्तरिक्ष, स्वर्ग में जो सब तीर्थ है, उन सबका अतिक्रमण करके यह स्वर्गद्वार (उन सबसे श्रेष्ठ होकर) स्थित है।।२८-३४।।

विष्णुभक्तिं समासाद्य रमन्ते तु सुनिश्चिताः।
संहृत्य शक्तितः कामं विषयेषु हि संस्थितम्।।३५।।

शक्तितःसर्वतोयुक्त्वाशक्तिस्तपसिसंस्थिता। नतेषांपुनरावृत्तिःकल्पकोटिशतैरपि॥३६॥
हन्यमानोऽपियोविद्वान्वसेच्छस्त्रशतैरपि। सयातिपरमं स्थानं यत्र गत्वा नशोचति॥३७॥
स्वर्गद्वारे वियुज्येत सयाति परमाङ्गतिम्। उत्तरं दक्षिणंवाऽपिअयनंनविकल्पयेत्॥३८॥
सर्वस्तेषां शुभःकालःस्वर्गद्वारंश्रयन्तिये। स्नानमात्रेणपापानिविलयंयान्तिदेहिनाम्॥३९॥
यावत्पापानि देहेनयेकुर्वन्ति जनाः क्षितौ। अयोध्या परमं स्थानंतेषामीरितमादरात्॥४०॥

जिन्होंने विष्णुभक्ति प्राप्त कर लिया है, विष्णु के प्रति जिनकी बुद्धि दृढ़ हो गयी है, जिन्होंने विषयों के प्रति अपनी कामनाओं का त्याग कर दिया है तथा जो सभी युक्तियों के द्वारा अपनी शक्तियों को तपस्या में लगा चुके हैं, करोड़ों कल्प काल में भी उनका पुनर्जन्म नहीं होता। सैकड़ों-सैकड़ों शस्त्रों का प्रहार होने पर भी विद्वान् व्यक्ति उस स्वर्गद्वार में ही रहता है, जहां जाने पर शोकरहित गति का लाभ होता है। इस तीर्थ में दक्षिणायन किंवा उत्तरायण का कालभेद नहीं होता। स्वर्गद्वार में शरण लेने पर मानव हेतु सभी काल शुद्ध हो जाते हैं। पृथिवी पर रहकर उस व्यक्ति ने कितने ही पाप क्यों न किये हों, इस तीर्थ में स्नान मात्र से उसके सभी दुरितों का क्षय हो जाता है। शास्त्र भी सादर यह कहते हैं कि ऐसे लोगों के लिये अयोध्या परमस्थान है।।३५-४०।।

ज्येष्ठे मासि सितेपक्षेपञ्चदश्यांविशेषतः। तस्यसाम्वत्सरीयात्रादेवैश्चन्द्रहरेःस्मृता॥४१॥
तस्मिन्नुद्यापनं चन्द्रसहस्त्रं व्रतयोगिभिः। कार्यं प्रयत्नतो विप्र! सर्वयज्ञफलाधिकम्॥४२॥
तस्मिन्कृते महापापक्षयात्स्वर्गो भवेन्नृणाम्॥४३॥

ज्येष्ठ मास के शुक्लपक्ष में विशेषतः पूर्णिमा के दिन देवता चन्द्र हरि की सांवत्सरी यात्रा करते हैं। योगीगण इसी पूर्णिमा के दिन चन्द्रसहस्त्रव्रत का उद्यापन करते हैं। हे विप्र! यह व्रत समस्त यज्ञफलों से श्रेष्ठ है। इसलिये यत्नतः चन्द्र सहस्त्रव्रताचरण करना चाहिये। इस व्रताचरण द्वारा सर्वपापक्षय होकर मानव को स्वर्गप्राप्ति हो जाती है।।४१-४३।।

श्रीव्यास उवाच

भगवन्ब्रूहि तत्त्वेनतस्यचन्द्रहरेः शुभाम्। उत्पत्तिञ्च तथाचन्द्रव्रतस्योद्यापनेविधिम्॥४४॥

महर्षि व्यास पूछते हैं—हे भगवान्! चन्द्रहरि की मनोहर उत्पत्ति तथा चन्द्रव्रतोद्यापन विधि को यथार्थ रूप से कहिये।।४४।।

अगस्त्य उवाच

अयोध्यानिलयं विष्णुंनत्वा शीतांशुरुत्सुकः।
आगच्छत्तीर्थमाहात्म्यं साक्षात्कर्तुं सुधानिधिः।
अत्राऽऽगत्य च चन्द्रोऽथ तीर्थयात्रां चकार सः॥४५॥
क्रमेण विधिपूर्वञ्च नानाश्चर्यसमन्वितः। समाराध्य ततो विष्णुं तपसा दुश्चरेण वै॥४६॥
तत्प्रसादं समासाद्य स्वाभिधानपुरस्सरम्। हरिं संस्थापयामासतेनचन्द्रहरिःस्मृतः॥४७॥

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—सुधानिधि शीतांशु (चन्द्र) उत्सुकता के कारण अयोध्या आये। वे तीर्थ माहात्म्य दर्शनार्थ आये थे। उन्होंने अयोध्यापति विष्णु को प्रणाम किया। उन चन्द्रमा ने यहां आकर सविधि तीर्थाटन किया और यहां का अनेक माहात्म्य देखकर विस्मित हो गये। उन्होंने यहां पर दुष्कर तपःश्चरण से श्रीहरि की आराधना भी किया। तदनन्तर अयोध्यापति विष्णु की कृपा प्राप्त करके उन्होंने अपना नाम आगे लगाकर (चन्द्र हरि) हरिमूर्त्ति की प्रतिष्ठा किया। इसी कारण इस मूर्त्ति को चन्द्रहरि मूर्त्ति कहते हैं।।४५-४७।।

वासुदेवप्रसादेन तत्स्थानं जातमद्भुतम्। तद्धि गुह्यतमं स्थानं वासुदेवस्य सुव्रत।।४८।।

सर्वेषामेव भूतानां भर्तुर्मोक्षस्य सर्वदा।
अस्मिन्सिद्धाः सदा विप्र! गोविन्दव्रतमास्थिताः।।४९।।
नानालिङ्गधरानित्यं विष्णुलोकाभिकाङ्क्षिणः।
अभ्यस्यन्ति परं योगं मुक्तात्मानो जितेन्द्रियाः।।५०।।

यथाधर्ममवाप्नोति अन्यत्र न तथा क्वचित्। दानं व्रतं तथा होमःसर्वमक्षयतां व्रजेत्।।५१।।
सर्वकामफलप्राप्तिर्जायते प्राणिनां सदा। तस्मादत्र विधातव्यंप्राणिभिर्यत्नतःक्रमात्।
दानादिकं विप्रपूजा दम्पत्योश्च विशेषतः।।५२।।
सर्वयज्ञाधिकफलं सर्वतीर्थावगाहनम्। सर्वदेवावलोकस्य यत्पुण्यं जायते नृणाम्।।५३।।
तत्सर्वं जायते पुण्यं प्राणिनामस्य दर्शनात्। तस्मादेतन्महाक्षेत्रं पुराणादिषुगीयते।।५४।।
उद्यापनविधिश्चात्र नृभिर्द्विजपुरस्सरम्। अग्रे चन्द्रहरेश्चन्द्रसहस्रव्रतसञ्ज्ञकः।।५५।।

हे सुव्रत! वासुदेव की कृपा के कारण यह स्थान अत्यन्त अद्भुद आकार वाला हो गया है। इसे वासुदेव का अत्यन्त गुप्त स्थान जानिये। हे विप्र! समस्त प्राणीगण को मुक्त करने वाले विष्णु का यह एक परम स्थान है। गोविन्द व्रतधारी विष्णुलोक प्राप्ति की कामना करने वाले मुक्तात्मा सिद्ध लोग नाना रूप धारण करके यहां सदा रहते हैं। यहां जिस फल की प्राप्ति होती है, अन्यत्र वैसा फललाभ नहीं होता। यहां दान-व्रत-होमादि सब अक्षय हो जाता है। इस तीर्थ में प्राणीगण की समस्त कामनायें पूरी हो जाती हैं। इसलिये यहां सतत् यत्नपूर्वक धर्म-कर्म का अनुष्ठान करें। दान-विष्णुपूजन विशेषतः द्विज दम्पति की अर्चना यहां अधिक फलदायक होती है। समस्त यज्ञ, समस्त तीर्थस्नान तथा सर्वविध देवदर्शन का जो फल है, केवल मात्र इस तीर्थ दर्शन द्वारा प्राणीगण को पूर्वोक्त सभी फल प्राप्त हो जाता है। इसलिये पुराणादि शास्त्रों में इसे महाक्षेत्र कहते हैं। मानवगण पहले सहस्रचन्द्र व्रत को सम्पन्न करें। तत्पश्चात् ब्राह्मण के साथ इसका उद्यापन सम्पन्न करें।।४८-५५।।

गतेवर्षद्वये सार्द्धे पञ्चपक्षे दिनद्वये। दिवसस्याऽष्टमे भागे पतत्येकोऽधिमासकः।।५६।।
त्र्यधिके वा अशीत्यब्दे चतुर्मासयुते ततः। भवेश्चन्द्रसहस्रं तु तावज्जीवति योनरः।
उद्यापनं प्रकर्त्तव्यं तेन यात्रा प्रयत्नतः।।५७।।

अब व्रत का उद्यापन काल कहता हूं। व्रताचरण के दो वर्ष आठ मास सत्रह दिन व्यतीत हो जाने पर दिन के अष्टम भाग में एक मलमास होता है। तिरासी वर्ष चार मास में सहस्रचन्द्र पूर्ण होता है। सौरक्रमानुसार यह मास गणना करनी चाहिये। क्योंकि चान्द्रक्रम से गणित करने पर मलमास के कारण तिरासी वर्ष चार मास

के पूर्व में ही सहस्रचन्द्रपूर्ण हो जाता है। इस कारण से तिरासी वर्ष चार मास के पहले ही सहस्रचन्द्र पूर्ण हो जाता है तथा व्रतोद्यापन भी समय से पहले होता है। (अतः चन्द्रमास से गणना करनी चाहिये)। जो मानव व्रत आरंभ करके इस सहस्रचन्द्रव्रत के अन्त तक अर्थात् तिरासी वर्ष चार मास जीवित रह जाता है, वही यत्नतः इस यात्रा का उद्यापन करे।।५६-५७।।

यत्पुण्यं परमं प्रोक्तं सततं यज्ञयाजिनाम्। सत्यवादिषु यत्पुण्यं यत्पुण्यंहेमदायिनि।
तत्पुण्यं लभते विप्र! सहस्राब्दस्य जीविभिः॥५८॥
सर्वसौख्यप्रदं तादृक्पुण्यव्रतमिहोच्यते॥५९॥
चतुर्दश्यां शुचिः स्नात्वा दन्तधावनपूर्वकम्। चरितब्रह्मचर्य्यश्च जितवाक्कायमानसः।
पौर्णमास्यां तथा कृत्वा चन्द्रपूजां च कारयेत्॥६०॥
पूर्वञ्च मातरः पूज्या गौर्यादिकक्रमेण च। ऋत्विजः पूजयेद्भक्त्यावृद्धिश्राद्धपुरस्सरम्॥६१॥
प्रयतैः प्रतिमा कार्या चन्द्रमण्डलसन्निभा। सहस्रसङ्ख्या ह्यथवातदर्द्धं वातदर्द्धकम्।
निजवित्तानुमानेन तदर्द्धेन तदर्द्धिकम्॥६२॥
ततः श्रद्धानुमानाद्वा कार्या वित्तानुमानतः।
अथवा षोडश शुभा विधातव्याःप्रयत्नतः॥६३॥
चन्द्रपूजां ततः कुर्यादागमोक्तविधानतः। माषैः षोडशभिः कार्याप्रत्येकंप्रतिमाशुभा॥६४॥

यज्ञ का यजन करने वालों के लिये जो परमपुण्य है, सत्यवादी लोगों हेतु जो परम सुकृत है, स्वर्णदान करने वाले तथा सहस्रवर्षजीवी लोग जिस पुण्य को प्राप्त करते हैं, वही सर्वसुखप्रद सहस्रचन्द्रव्रत से भी प्राप्त होता है। पवित्र मानव चतुर्दशी के दिन दांतों को साफ करके स्नान करे। मन-वाणी तथा कर्म संयम तथा ब्रह्मचर्य पालन करें। तदनन्तर पूर्णिमा के दिन पूर्वोक्त नियम द्वारा चन्द्रपूजा करके पहले गौरी-पद्मादिक्रम से षोडश मातृकापूजन सम्पन्न करें। तत्पश्चात् भक्तिपूर्वक वृद्धिश्राद्धोपरान्त ऋत्विकों की पूजा तथा प्रयत्नपूर्वक चन्द्रमण्डल के समान एक हजार चन्द्रप्रतिमा बनाये। इस प्रतिमा का निर्माण करके अपनी अर्थशक्ति के अनुसार १०००, अथवा ५००, किंवा २५० अथवा जितनी शक्ति हो उतनी संख्या में श्रद्धापूर्वक चन्द्रप्रतिमा बनाये। अथवा सोलह संख्यक ही प्रतिमा बनाये। इन सब प्रतिमाओं को सुन्दर बनाना चाहिये। तदनन्तर आगमोक्त विधान से इनकी पूजा करें। हे द्विज! पूर्वकाल में जो प्रतिमानिर्माण क्रम कहा गया है, उसके अनुसार प्रत्येक प्रतिमा सुशोभना बने तथा प्रत्येक प्रतिमा सोलह मासा वजन की ही हो।।५८-६४।।

सोममन्त्रेण होमस्तु कार्योवित्तानुमानतः। प्रतिमास्थापनंकुर्यात्सोममन्त्रमुदीरयेत्॥६५॥
सोमोत्पत्तिं सोमसूक्तं पाठयेच्च प्रयत्नतः। चन्द्रपूजांततः कुर्यादागमोक्तविधानतः॥६६॥
चन्द्रन्यासं कलान्यासं कारयेन्मण्डलेजलम्। एकादशेन्द्रिय न्यासंतथैवविधिपूर्वकम्॥६७॥
चन्द्रबिम्बनिभं कार्य्यंमण्डलंशुभतण्डुलैः। मध्येचकलशःस्थाप्योगव्येनपयसाप्लुतः॥६८॥
चतुरस्रेषुसम्पूर्णान्कलशान्स्थापयेद्बहिः। मण्डले चन्द्रपूजाचकर्तव्यानामभिःक्रमात्॥६९॥

तत्पश्चात् अपनी धनशक्ति के अनुसार सोममन्त्र से हवन करना चाहिये। सोममन्त्रोच्चार करते हुये प्रतिमा स्थापना करके प्रयत्नपूर्वक सोमोत्पात्त एवं सोमसूक्तपाठ करे। तदनन्तर आगमोक्त विधानानुसार पुनः चन्द्र की पूजा करके चन्द्रमण्डल में यथाविधि चन्द्रन्यास, कलान्यास तथा एकादश इन्द्रियन्यास करे। इस चन्द्रविम्ब के समान चन्द्रमण्डल को श्वेत तण्डुल द्वारा बनाकर मण्डल के मध्य में गो दुग्ध भरा कलश स्थापित करे। मण्डल के चतुष्कोण के बाहर चार कलस की स्थापना करनी चाहिये। तत्पश्चात् "हिमांशवे नमः, सोमचन्द्राय नमः, चन्द्राय नमः" आदि मूल श्लोक में लिखे 'नमः' युक्तमन्त्र से चन्द्रपूजन सम्पन्न करें। तत्पश्चात् स्तव करना चाहिये।।६५-६९।।

हिमांशवे नमश्चैव सोमचन्द्राय वै नमः। चन्द्राय विधवे नित्यं नमः कुमुदबन्धवे॥७०॥
सुधांशवे च सोमाय औषधीशाय वै नमः। नमोऽब्जायमृगाङ्कायकलानांनिधयेनमः॥७१॥
नमो नक्षत्रनाथाय शर्वरीपतये नमः। जैवावृकाय सततं द्विजराजाय वै नमः॥७२॥

यथा—हिमांशु को, सोमचन्द्र को, चन्द्र-विधु एवं कुमुदबन्धु को नमस्कार! सुधांशु, सोम, औषधीश, अज, मृगांक, कलानिधि, नक्षत्रनाथ, शर्वरीनाथ, जैवातृक तथा द्विजराज को सतत् नमस्कार!।।७०-७२।।

एवं षोडशभिश्चन्द्रः स्तोतव्यो नामभिः क्रमात्॥७३॥
ततो वै प्रयतो दद्याद्विधिवन्मन्त्रपूर्वकम्। शङ्खतोयं समादाय सपुष्पफलचन्दनम्॥७४॥
नमस्तेमासमासान्ते जायमानःपुनः पुनः। गृहाणार्घ्यंशशाङ्क! त्वं रोहिण्यासहितोमम॥७५॥
एवं सम्पूज्य विधिवच्छशिनं प्रणतोभवेत्। षोडशान्येचकलशादुग्धपूर्णाःसरत्नकाः॥७६॥
सवस्त्राच्छादनाः शान्त्यै दातव्यास्ते द्विजन्मने।
अभिषेकं ततः कुर्यात्पायसेन जलेन तु॥७७॥
ऋत्विजां मनसस्तुष्टिः कार्या वित्तानुमानतः। ब्राह्मणंभोजयेतत्र सकुटुम्बंविशेषतः॥७८॥

इस प्रकार चन्द्र के इन सोलह नामों का उच्चारण करके यथाक्रमेण स्तव करे। तदनन्तर इस मन्त्र से जो आगे कहा जा रहा है, प्रयत्नपूर्वक यथाविधि पुष्प एवं चन्दनयुक्त जल शंख द्वारा चन्द्रमा को अर्पित करे। मन्त्र है "हे शशाङ्क! आप प्रत्येक मास के अवसान से पुनः-पुनः पूर्णतः उदित होते हैं। आप रोहिणी के साथ मेरे द्वारा प्रदत्त अर्घ्य को ग्रहण करिये।" इस प्रकार से यथाविधि चन्द्रपूजनोपरान्त प्रणत होकर अपनी शान्तिकामनार्थ दुग्ध तथा रत्नयुक्त वस्त्राच्छादित अन्य षोडश कलस द्विजों को प्रदान करें। तदनन्तर दुग्धयुक्त जल से अभिषेक सम्पन्न करके अपनी धन शक्ति के अनुसार ऋत्विक्गण को सन्तुष्ट करें। इसके पश्चात् कुटुम्बयुक्त ब्राह्मणों को भोजन कराये।।७३-७८।।

पूजनीयौप्रयत्नेन वस्त्रैश्च द्विजदम्पती। कर्तव्यञ्च ततो भूरिदक्षिणादानमुत्तमम्॥७९॥
प्रतिमाश्च प्रदातव्या द्विजेभ्यो धेनुपूर्विकाः। सुवर्णं रजतं वस्त्रं तथान्नं च विशेषतः।
दातव्यं चन्द्रसुप्रीत्यै हर्षादेवं द्विजन्मने॥८०॥
उपवासविधानेन दिनशेषं नयेत्सुधीः। अनन्तरे च दिवसे कुर्याद्भगवदर्चनम्।
बान्धवैः सह भुञ्जीत नियमञ्च विसर्ज्जयेत्॥८१॥

एवञ्च कुरुते चन्द्रसहस्रं व्रतमुत्तम्। ब्रह्मघ्नोऽपि सुरापोऽपि स्तेयी च गुरुतल्पगः।
व्रतेनाऽनेन शुद्धात्मा चन्द्रलोकं ब्रजेन्नरः॥८२॥
यादृशश्च भवेद्विप्र! प्रियो नारायणस्य च। एवं करोति नियतं कृतकृत्यो भवेन्नरः॥८३॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांद्वितीये वैष्णवखण्डेऽयोध्यामाहात्म्ये
चन्द्रसहस्रव्रतोद्यापनविधिवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥३॥

इसके पश्चात् नाना वस्त्रों द्वारा प्रयत्नतः द्विजदम्पति की पूजा तथा उनको उत्तम प्रचुर दक्षिणा दान करके द्विजगण को धेनुयुक्त प्रतिमा देनी चाहिये। तत्पश्चात् चन्द्र के उत्तम प्रसन्नतार्थ स्वर्ण-रजत-वस्त्र तथा विशेष रूप से अन्नदान करें। तत्पश्चात् व्रती सुधी व्यक्ति वह दिन अनशन में ही व्यतीत करके अगले दिन भगवान् की अर्चना करे तथा पूजावसान के समय बान्धवगण के साथ भोजन करके व्रतनियम का समापन करे। इस प्रकार से अत्युत्तम चन्द्रसहस्र व्रताचरण द्वारा ब्रह्महत्या, सुरापान, चौर्य, गुरुपत्नीगमन करने वाले मानव भी इस व्रतप्रभाव से विशुद्धात्मा होकर चन्द्रलोक लाभ करते हैं। हे विप्र! जो यह व्रत करता है, वह नारायण का प्रिय है। मानव नित्य यह व्रत करके कृतकृत्य हो जाता है॥७९-८३॥

॥तृतीय अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

चतुर्थोऽध्यायः

धर्महरि-स्वर्णखनि माहात्म्य, कौत्स-रघुसंवाद

अगस्त्य उवाच

तस्माच्चन्द्रहरिस्थानादाग्नेय्यां दिशि संस्थितः। देवो धर्महरिर्न्नाम कलिकल्मषनाशकः॥१॥
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञः स्वकर्मपरिनिष्ठतः। पुरा समागतो धर्मस्तीर्थयात्राचिकीर्षया॥२॥
आगत्य चचकारोच्चैर्यात्रांतत्रादरेणसः। दृष्ट्वामाहात्म्यमतुलमयोध्यायाःसविस्मयः॥३॥
विधाय स्वभुजावूर्ध्वौ विप्रोऽवोचन्मुदान्वितः।
अहो \ रम्यमिदं तीर्थमहो माहात्म्यमुत्तमम्॥४॥
अयोध्यासदृशी कापि दृश्यते नाऽपरा पुरी।
या न स्पृशति वसुधां विष्णुचक्रस्थिताऽनिशम्॥५॥
यस्यां स्थितो हरिः साक्षा सेयं केनोपमीयते।
अहो तीर्थानि सर्वाणि विष्णुलोकप्रदानि वै॥६॥

अहो विष्णुरहोतीर्थमयोध्याऽहो महापुरी।
अहो माहात्म्यमतुलं किं न श्लाघ्यमिहास्थितम्।।७।।
इत्युक्त्वा तत्र बहुशो ननर्तप्रमदाकुलः। धर्मोमाहात्म्यमालोक्यअयोध्यायाविशेषतः।।८।।
तं तथा नर्तमानंवै धर्मं दृष्ट्वा कृपान्वितः। आविर्बभूव भगवान्पीतवासाहरिः स्वयम्।।
तं प्रणम्य च धर्मोऽथ तुष्टाव हरिमादरात्।।९।।

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—इस चन्द्रहरिक्षेत्र के अग्निकोण दिशा में कलिकलुषनाशक देव धर्महरि की स्थिति है। पूर्वकाल में वेद-वेदाङ्ग तत्वार्थज्ञ स्वकर्मतत्पर धर्मदेव तीर्थयात्रार्थ यहां आये। उन्होंने यहां आकर एक महान् तीर्थयात्रा का अनुष्ठान किया था। वे अयोध्या का अतुलनीय माहात्म्य देखकर विस्मित हो गये। उन्होंने हर्षपूर्वक अपनी भुजाओं को उठाकर कहा—"अहा! क्या रमणीक तीर्थ है! यह अत्युत्तम माहात्म्य वाला है। मैंने अयोध्या ऐसी अन्य पुरी नहीं देखी है। यह पुरी पृथिवी का स्पर्श नहीं करती। यह विष्णुचक्र पर स्थित है। यहां स्वयं हरि विराजमान हैं। इस पुरी के साथ अन्य पुरी की उपमा ही नहीं है। यहां के सभी तीर्थ विष्णुलोक प्रदाता हैं। यह अत्युत्तम तीर्थ है। अयोध्या महापुरी हैं। यहां की तीर्थ महिमा कितनी महान् है। यहां का क्या पूजनीय नहीं है!" धर्म यह कहकर अनेक प्रकार से नृत्य करने लगे तथा अयोध्या के माहात्म्य को देखकर उनका हृदय प्रेमाभिभूत हो गया। धर्म को इस प्रकार से भावविभोर होकर नृत्यरत देखकर वहां स्वयं हरि का आविर्भाव हो गया। वे उनका दर्शन पाकर प्रणामपूर्वक उनसे आदर पूर्वक कहने लगे (स्तव करने लगे)।।१-९।।

धर्म उवाच

नमः क्षीराब्धिवासाय नमः पर्यङ्कशायिने। नमो शङ्करसंस्पृष्टदिव्यपादाय विष्णवे।।१०।।

धर्म कहते हैं—आप क्षीराब्धि निवासी को नमस्कार! शेषपर्यङ्क पर शयन करने वाले आप को नमस्कार! हे विष्णु! शंकर अपने मस्तक पर आपके चरणद्वय को धारण करते हैं। आपको प्रणाम!।१०।।

भक्त्याऽर्च्चितसुपादाय नमोऽजादिप्रियाय ते।
शुभाङ्गाय सुनेत्राय माधवाय नमोनमः।।११।।
नमोऽरविन्दपादाय पद्मनाभाय वै नमः। नमः क्षीराब्धिकल्लोलस्पृष्टगात्राय शार्ङ्गिणे।।१२।।
ॐनमो योगनिद्राय योगर्क्षैर्भावितात्मने। ताक्ष्र्यासनाय देवाय गोविन्दायनमोनमः।।१३।।
सुकेशाय सुनासाय सुललाटाय चक्रिणे। सुवस्त्राय सुवर्णाय श्रीधराय नमोनमः।।१४।।

भक्तगण भक्तिभाव से जिनके चरणकमल की अर्चना करते हैं, ब्रह्मादि देवता जिनके प्रिय हैं, जिनके अंग शोभायुक्त तथा नयनद्वय मनोहारी हैं, उन माधव को प्रणाम! हे शर्ङ्गधारी! आपके चरणद्वय तथा आपकी नाभि तो कमल के समान है। क्षीरसागर की जलकल्लोल आपके चरणों का स्पर्श करती हैं, आपको प्रणाम! जिनकी निद्रा ही योग है, नक्षत्रादि से जिनका शिशुमारादि शरीर गठित है, जो गरुड़ासनासीन हैं, उन देव गोविन्द को प्रणाम! हे चक्रिण! आपके ललाट, नासिका तथा केश सुशोभन हैं। आप उत्तम वस्त्र तथा वर्ण द्वारा श्रीधारी हैं। आपको प्रणाम, पुनः प्रणाम!।।११-१४।।

सुबाहवे नमस्तुभ्यं चारुजङ्घाय ते नमः। सुवासाय सुदिव्याय सुविद्याय गदाभृते।।१५।।

केशवाय च शान्ताय वामनाय नमोनमः। धर्मप्रियाय देवाय नमस्ते पीतवाससे॥१६॥

आप सुबाहु, उत्तम जंघा वाले, उत्तम वस्त्रधारी, दिव्य, सुविद्यावान् एवं गदाधारी हैं। आप केशव, शान्त, वामन हैं, आपको पुनः-पुनः प्रणाम! हे धर्मप्रिय! पीतवस्त्रधारी! आप देवदेव को प्रणाम!।।१५-१६।।

अगस्त्य उवाच

इति स्तुतो जगन्नाथो धर्मेण श्रीपतिर्मुदा। उवाच स हृषीकेशः प्रीतो धर्ममुदारधीः॥१७॥

अगस्त्य कहते हैं—धर्म द्वारा एवंविध स्तुत होकर जगत्पत्ति, रमापति, हृषीकेश, उदारबुद्धि श्रीहरि प्रेमपूर्वक कहने लगे।।१७।।

श्रीभगवानुवाच

तुष्टोऽहं भवतो धर्म! स्तोत्रेणानेन सुव्रत!। वरम्वरय धर्मज्ञ! यस्तेस्यान्मनसः प्रियः॥१८॥

स्तोत्रेणानेन यः स्तौति मानवो मामतन्द्रितः।
सर्वान्कामान्वाप्नोति पूजितः श्रीयुतःसदा॥१९॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे धर्म! तुम्हारे इस स्तुति वाक्य द्वारा मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हो गया। हे धर्मज्ञ! तुम अभीष्ट वर याचना करो। हे धर्मज्ञ! जो आलस्यरहित मानव इस स्तुति द्वारा मेरा स्तव करेगा, वह अपनी समस्त कामना की प्राप्ति करके सतत् पूजित तथा श्रीमान् कहा जायेगा।।१८-१९।।

धर्म उवाच

यदि तुष्टोऽसि भगवन्देवदेव! जगत्पते!। त्वामहंस्थापयाम्यत्र निजनाम्नाजगद्गुरो॥२०॥

धर्म कहते हैं—हे जगत्पति! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तब मेरी इच्छा है कि मैं अपने नाम के अनुसार आपकी यहां स्थापना करूं।।२०।।

अगस्त्य उवाच

एवमस्त्विति सम्प्रोच्याऽभवद्धर्महरिर्विभुः। स्मरणादेव मुच्येत नरो धर्महरेर्विभोः॥२१॥

सरयूसलिले स्नात्वा सुचिन्ताकुलमानसः। देवं धर्महरिं पश्येत्सर्वपापैः प्रमुच्यते॥२२॥

अत्र दानं तथा होमं जपोब्राह्मणभोजनम्। सर्वमक्षयतांयातिविष्णुलोकेनिवासकृत्॥२३॥

अज्ञानाज्ज्ञानतो वाऽपि यत्किञ्चिद्दुष्कृतम्भवेत्।
प्रायश्चित्तं विधातव्यं तन्नाशाय प्रयत्नतः॥२४॥

प्रायश्चित्तेन विधिना पापं तस्य प्रणश्यति। तस्मादत्र प्रकर्त्तव्यंप्रायश्चित्तंविधानतः॥२५॥

अज्ञानाज्ज्ञानतोवापिराजादेर्निग्रहात्तथा। नित्यकर्मनिवृत्तिःस्याद्यस्यपुंसोऽवशात्मनः।
तेनाऽप्यत्र विधातव्यं प्रायश्चित्तं प्रयत्नतः॥२६॥

अत्र साक्षात्स्वयं देवो विष्णुर्वसति सादरः। तस्माद्वर्णयितुं शक्यो महिमा न हि मानवैः॥२७॥

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—भगवान् ने कहा 'ऐसा ही हो।' तदनन्तर धर्म ने धर्महरिमूर्त्ति स्थापित किया।

इस धर्महरि मूर्त्ति के स्मरण मात्र से मानव मुक्त हो जाता है। जो मानव सरयू जल में स्नान करके उत्तम चिन्तन करते हुये देव धर्महरि का दर्शन करता है, इससे वह समस्त कलुषरहित हो जाता है। यहां अन्नदान, होम, जप, ब्राह्मण भोजन अक्षयफलप्रद हो जाता है। इन सब कर्म के प्रभाव द्वारा मानव विष्णुलोक में वास करता है। जानबूझ कर अथवा बिना जाने मनुष्य में जो भी दुष्कर्म संचित हो जाते हैं, उन सब दुरित के नाशार्थ प्रयत्नतः प्रायश्चित्त करना विहित होता है। यथाविधि प्रायश्चित्त द्वारा ही दुष्कृति दूर होती है। इसलिये इस तीर्थ में मनुष्य प्रयत्नपूर्वक पापनाश की कामना से प्रायश्चित्त करे। यहां स्वयं विष्णु का सादर निवास है। अतएव मानवगण तीर्थ की महिमा का वर्णन नहीं कर सकता। इसमें सन्देह नहीं है।।२१-२७।।

आषाढे शुक्लपक्षस्यएकादश्यांद्विजोत्तम!। तस्यसाम्वत्सरीयात्राकर्तव्यातुविधानतः।।२८।।
स्वर्गद्वारे नरःस्नात्वा दृष्ट्वा धर्महरिंविभुम्। सर्वपापविशुद्धात्माविष्णुलोकेवसेत्सदा।।२९।।
तस्माद्दक्षिणदिग्भागे स्वर्णस्य खनिरुत्तमा। यत्रचक्रेस्वर्णवृष्टिं कुबेरो रघुजाद्भयात्।।३०।।

हे द्विजोत्तम! आषाढ़ की शुक्ला एकादशी के दिन यत्नतः इस स्वर्गद्वार तीर्थ की सांवत्सरी यात्रा करना कर्त्तव्य है। मनुष्य स्वर्गद्वार में स्नान तथा विभु धर्महरि का दर्शन करके सर्वपापरहित हो जाता है। वह विशुद्धात्मा होकर विष्णुलोक में निवास करता है। इस स्वर्गद्वार के दक्षिण की ओर स्वर्णखान है। यह अत्युत्तम है। रघु के भय से यहां पर कुबेर द्वारा स्वर्णवृष्टि की गयी थी।।२८-३०।।

व्यास उवाच

भगवन्ब्रूहि तत्त्वज्ञ! स्वर्णवृष्टिरभूत्कथम्। कुबेरस्य कथं भीतिरुत्पन्ना रघुभूपतेः।।३१।।
एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तरान्मम सुव्रत!। श्रुत्वा कथारहस्यानिनतृप्यतिमनो मम।।३२।।

महर्षि व्यास कहते हैं—हे भगवान्! यहां स्वर्णवृष्टि क्यों की गयी थी। हे तत्वज्ञ! रघु से कुबेर को क्यों भय हो गया? यह सब विस्तार पूर्वक मुझसे कहिये। हे सुव्रत! यह सब रहस्य कथा सुन कर मेरा मन तृप्त नहीं हो रहा है।।३१-३२।।

अगस्त्य उवाच

श्रृणु विप्र! प्रवक्ष्यामि स्वर्णस्योत्पत्तिमुत्तमाम्।
यस्य श्रवणतो नृणां जायते विस्मयो महान्।।३३।।
आसीत्पुरा रघुपतिरिक्ष्वाकुकुलवर्द्धनः। रघुर्निजभुजोदारवीर्यशासितभूतलः।।३४।।
प्रतापतापितारातिवर्गव्याख्यातसद्यशाः। प्रजाः पालयता सम्यक्तेन नीतिमता सता।।३५।।
यशःपूरेण संलिप्ता दिशोदश सितत्विषा। स चक्रे प्रौढविभवसाधनांविजयक्रमात्।।३६।।
नानादेशान्समाक्रम्य चतुरङ्गबलान्वितः। भूतानि वशमानीय वसु जग्राह दण्डतः।।३७।।

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—हे विप्र! अब स्वर्ण की उत्तम उत्पत्तिकथा कह रहा हूं। सुनिये। मानवगण की स्वर्णोत्पत्ति की यह कथा सुनकर महाविस्मय हो रहा है। पूर्वकाल में ईक्ष्वाकुकुल का वर्द्धन करने वाले रघुपति रघु ने अपने उदार भुजवीर्य से समस्त पृथिवीमण्डल पर शासन किया। उनके शत्रु यद्यपि उनके प्रताप

से भले ही तापित रहे हों, तथापि वे भी उन रघु के शासन गुणों के कारण उनका यशगान करते थे। उन राजारघु ने उत्तम नीति का आश्रय लेकर प्रजा का शासन तथा संरक्षण किया था। उनकी यशःकिरणे उस समय दसों दिशाओं को समाच्छन्न कर रही थी। उस समय राजारघु ने दिग्विजय से अर्जित धन द्वारा विभवसाधन का विचार करके नाना देशों पर आक्रमण करके चतुरंगिणी सेना लेकर दण्ड द्वारा राजाओं को वश में किया तथा उनसे धन लिया।।३३-३७।।

उत्कृष्टान्नृपतीन्वीरो दण्डयित्वा बलाधिकान्।
रत्नानि विविधान्याशु जग्राहाऽतिबलस्तदा॥३८॥
स विजित्य दिशः सर्वा गृहीत्वा रत्नसञ्चयम्।
अयोध्यामागतो राजा राजधानीञ्च तां शुभाम्॥३९॥
तत्रागत्यचकाकुत्स्थोयज्ञायोत्सुकमानसः। चकारनिर्मलांबुद्धिंनिजवंशोचितक्रियाम्॥४०॥

अतिबली वीर रघु ने अल्पकाल में ही अनेक श्रेष्ठ राजागण को वश में करके उनसे प्रचुर धन-रत्न लिया। राजा ने इस प्रकार से सभी दिशाओं पर विजय पाकर प्रभूत धन एकत्र किया। वे अपनी सुशोभित राजधानी अयोध्या वापस आये। जब वे काकुस्थ्य वंशी अयोध्या लौटे, तब वे अयोध्या में यज्ञार्थ उत्सुक हो गये। यज्ञादिक्रिया उनके कुल के लिये उचित थी, तभी उन्होंने उस कुलोचित क्रिया करने के लिये अपने निर्मल मन को तत्पर किया।।३८-४०।।

वसिष्ठं मुनिमाज्ञाय वामदेवं च कश्यपम्॥४१॥
अन्यानपि मुनिश्रेष्ठान्नानातीर्थसमाश्रितान्। समानयद्विनीतेन द्विजवर्येण भूपतिः॥४२॥
दृष्ट्वास्थितान्सतान्सर्वान्प्रदीप्तानिवपावकान्। तानागतान्विदित्वाऽथरघुःपरपुरञ्जयः।
निश्चक्राम यथान्यायं स्वयमेव महायशाः॥४३॥
ततो विनीतवत्सर्वान्काकुत्स्थो द्विजसत्तमान्। उवाच धर्मयुक्तं च वचनं यज्ञसिद्धये॥४४॥

इसके पश्चात् रघु ने महर्षि वसिष्ठ को बुलवाया। उस विनीत राजा ने वसिष्ठ के माध्यम से वामदेव, काश्यप तथा अन्य तीर्थवासी उत्तम मुनिगण को आमन्त्रित किया। महायशस्वी पररिपुजयी काकुस्थ रघु ने इन पवित्र मुनिगण को आया देखकर महल से बाहर आकर विनीत भाव से यज्ञ सिद्धि के लिये इस प्रकार धर्मयुक्त वाक्य उन ऋषिसत्तमगण से कहा।।४१-४४।।

रघुरुवाच

मुनयः सर्व एवैते यूयं शृणुत मद्वचः। यज्ञं विधातुमिच्छामि तत्राज्ञां दातुमर्हथ॥४५॥
साम्प्रतं मामको यज्ञोयुक्तःस्यान्मुनिसत्तमाः। एतद्विचार्यतत्त्वेन ब्रूत यूयंमुनीश्वराः॥४६॥

रघुराज कहते हैं—हे मुनिगण! आप सब आये हैं। अब मेरा वाक्य सुनिये। हे मुनिसत्तमगण! सम्प्रति मैंने यह भी इच्छा किया है। अतः मेरे द्वारा यज्ञ करना उचित है। आप आदेश दीजिये। हे मुनीश्वगण! आप यथायथ विचार करके मुझे आदेश दीजिये।।४५-४६।।

मुनय ऊचुः

राजन्विश्वजिदाख्यातायज्ञानांयज्ञउत्तमः। साम्प्रतंकुरु तं यत्नान्माविलम्बंवृथाकृथाः।।४७।।

मुनिगण कहते हैं—हे राजन्! विश्वजित् नामक एक यज्ञ है। यह सर्वश्रेष्ठ यज्ञ है। विलम्ब नहीं करिये।।४७।।

अगस्त्य उवाच

नृपश्चक्रे ततो राज्ञं विश्वदिग्जयसञ्ज्ञितम्। नानासम्भारमधुरं कृतसर्वस्वदक्षिणम्।।४८।।
नानाविधेन दानेन मुनिसन्तोषहर्षकृत्। सर्वस्वमेव प्रददौ द्विजेभ्यो बहुमानतः।।४९।।
तेषु विश्वेषु यातेषु पूजितेषु गृहान्स्वकान्। बन्धुष्वपि च तुष्टेषु मुनिषु प्रणतेषु च।।५०।।
तेन यज्ञेन विधिवद्विहितेन नरेश्वरः। शुशुभे शोभनाचारः स्वर्गे देवेन्द्रवत्क्षणात्।।५१।।
तत्रान्तरे समभ्यायान्मुनिर्यमवताम्बरः। विश्वामित्रमुनेरन्तेवासीकौत्सइतिस्मृतः।।५२।।
दक्षिणार्थं गुरोर्द्धीमान्पावितुं तं नरेश्वरम्। चतुर्दशसुवर्णानां कोटीराहर सत्वरम्।।
मद् दक्षिणेति गुरुणा निर्बन्धाद्याचिनो रुषा। आगतः स मुनिः कौत्सस्ततो याचितुमादरात्।।५३।।
रघुं भूपालतिलकं दत्तसर्वस्वदक्षिणम्।।५४।।
तमागतमभिप्रेत्य रघुरादरतस्तदा। उत्थाय पूजयामास विधिवत्स परन्तपः।
सपर्य्यासीत्तस्य सर्वा मृत्पात्रविहितक्रिया।।५५।।
पूजा सम्भारमालोक्य तादृशं तं मुनीश्वरः।
विस्मितोऽभून्निरानन्दो दक्षिणाऽऽशां परित्यजन्।
उवाच मधुरं वाक्यं वाक्यज्ञानविशारदः।।५६।।

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—तदनन्तर राजा ने विविध मधुर द्रव्य के ढेर को मंगवाकर अपना सर्वस्व दक्षिणा के रूप में देकर विश्वजित् यज्ञाचरण किया। उनके यज्ञ में मुनियों ने अनेक प्रकार का दान ग्रहण किया तथा अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये। तदनन्तर सभी हर्षित होकर राजा द्वारा पूजित होकर स्वगृह चले गये। उसी समय विश्वामित्र के अन्तेवासी धीमान् मुनि कौत्स राजा रघु को पवित्र करने वहां आ गये। उन्होंने अपने गुरु को गुरुदक्षिणा प्रदान करने हेतु राजा से धन मांगा। कौत्स ऋषि ने कहा—"हे राजन्! शीघ्र चतुर्दश कोटि स्वर्ण मुद्रा लाईये। जब मैंने गुरु से दक्षिणा प्रदान करने हेतु प्रार्थना किया, तब उन्होंने क्रोधित होकर मुझे यह आदेश प्रदान किया।" हे द्विज! गुरुदक्षिणा के लिये धन हेतु जब ऋषि कौत्स ने राजा रघु के समीप आगमन किया था तब राजाओं में श्रेष्ठ रघु ने विश्वजित् यज्ञ में सर्वस्वदान कर दिया था, तथापि वे आसन से उठे और उन समागत ऋषि कौत्स का यथाविधि पूजन किया। उस समय रघु के पास मात्र एक मिट्टी का पात्र बचा था। राजा ने उस मिट्टी के पात्र से ही ऋषि कौत्स का चरणप्रक्षालनादि सम्पन्न किया था। मुनिवर कौत्स राजा के हाथ में ऐसा पूजापात्र देखकर विस्मित हो गये। उनका आनन्द लुप्त हो गया। उन्होंने दक्षिणा पाने की आशा त्याग दिया था। तब वाक्यज्ञान विशारद ऋषि कौत्स राजा से यह मधुर वाक्य कहने लगे।।४८-५६।।

कौत्स उवाच

राजन्नभ्युदयस्तेऽतु गच्छाम्यन्यत्र साम्प्रतम्।।५७।।
गुर्वर्थाहरणायैवदत्तसर्वस्वदक्षिणम्। त्वां न याचे धनाभावादतोऽन्यत्रव्रजाम्यहम्।।५८।।

ऋषि कौत्स कहते हैं—हे राजन्! तुम्हारा मंगल हो। अब मैं गुरु दक्षिणार्थ धन एकत्र करने अन्यत्र जा रहा हूं। तुमने विश्वजित् यज्ञ में सर्वस्वदान कर दिया था। तुमको तो स्वयं धनाभाव है। अतः मैं अन्यत्र जा रहा हूं।।५७-५८।।

अगस्त्य उवाच

इत्युक्तस्तेन मुनिना रघुः परपुरञ्जयः। क्षणं ध्यात्वाऽब्रवीदेनंविनयाद्विहिताञ्जलिः।।५९।।

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—मुनि कौत्स के यह कहने पर परशत्रुजयी रघु ने क्षणकाल विचार करके यथाविधि हाथ जोड़ा तथा विनय के साथ उनसे कहने लगे।।५९।।

रघुरुवाच

भगवंस्तिष्ठ मे हर्म्ये दिनमेकं मुनिव्रत!। यावद्यतिष्ये भगवन्भवदर्थार्थमुच्चकैः।।६०।।

राजा रघु कहते हैं—हे भगवान्, मुनिव्रत! आप एक दिन मेरे महल में निवास करिये। मैं इस बीच आपके द्वारा मांगा गया धन लाने का प्रयत्न करूंगा।।६०।।

अगस्त्य उवाच

इत्युक्त्वापरमोदारवचो मुनिमुदारधीः। प्रतस्थे च रघुस्तत्र कुबेरविजिगीषया।।६१।।
तमायान्तं कुबेरोऽथ विज्ञाप्य वचनोदितैः। प्रसन्नमनसंचक्रेवृष्टिं स्वर्णस्य चाक्षयाम्।।६२।।
स्वर्णवृष्टिरभूद्यत्र सास्वर्णखनिरुत्तमा। स मुनिं दर्शयामास खनिंतेन निवेदिताम्।।६३।।
तस्मै समर्पयामास तांरघुःखनिमुत्तमाम्। मुनीन्द्रोऽपिगृहीत्वाशुततोगुर्वर्थमादरात्।।६४।।
राज्ञेनिवेदयामाससर्वमन्यद्गुणाधिकः। वरानथ ददौ तुष्टः कौत्सो मतिमताम्वरः।।६५।।

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—उदारबुद्धि रघु ने कौत्स से यह परम उत्तम वाक्य कहा तथा कुबेर पर विजय करने के लिये वहां चल पड़े। जब रघु कुबेर पुरी में पहुंचे तब उनके आगमन का संवाद सुनकर कुबेर ने उनके यहां अक्षय स्वर्णवृष्टि करके रघु को प्रसन्न किया। हे द्विज! कुबेर ने जहां स्वर्णवर्षा किया था, वहीं स्वर्ण की उत्तम खान हो गयी। तदनन्तर रघु ने ऋषि को वह उत्तम स्वर्ण खान दिखला कर वह समस्त कौत्स को ही अर्पित किया। तदनन्तर गुणी ज्ञानीप्रवर मुनिवर कौत्स ने शीघ्र उस खान से आदरपूर्वक गुरु के सत्कारार्थ स्वर्ण लिया तथा राजा के पास जाकर बचा स्वर्ण उनको लौटाया और राजा को अनेक वर प्रदान किया।।६१-६५।।

कौत्स उवाच

राजल्लंभस्वसत्पुत्रं निजवंशगुणान्वितम्। इयंस्वर्ण खनिस्तूर्णं मनोऽभीष्टफलप्रदा।।६६।।
भूयादत्र परं तीर्थं सर्वपापहरं सदा। अत्र स्नानेन दानेन दानेन नृणांलक्ष्मीःप्रजायते।।६७।।

वैशाखेशुक्लद्वादश्यांयात्रासाम्वत्सस्मृता। नानाभीष्टफलप्राप्तिभूर्यायान्मद्वचसानृणाम्॥६८॥

ऋषि कौत्स कहते हैं—हे राजन्! शीघ्र तुमको तुम्हारे वंश के गुणानुरूप उत्तम सन्तान का लाभ होगा। यह स्वर्णखान तुम्हारे लिये अभीष्ट फलप्रद हो जाये। यहां सर्वपापहरी उत्कृष्ट तीर्थ होगा। जो मानव इस तीर्थ में दान करेगा, मेरे वर के अनुसार वह श्रीमान् होगा। वैशाख शुक्ला द्वादशी के दिन यहां तीर्थ सांवत्सरी यात्रा होगी। मेरे आदेशानुसार मानवगण यह यात्रा करके नानारूप में अभीष्ट प्राप्त करे।।६६-६८।।

अगस्त्य उवाच

इति दत्त्वा वरान्राज्ञेकौत्सः सन्तुष्टमानसः। प्रतस्थे निजकार्यार्थे गुरोराश्रममुत्सुकः॥६९॥
राजाः सकृतकृत्योऽथशेषंसङ्गृह्यतद्धनम्। द्विजेभ्योविधिवद्दत्त्वापालयामासवैप्रजाः॥७०॥
एवं स्वर्णखनेर्जातं माहात्म्यञ्च मुनीश्वरात्॥७१॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डेऽयोध्या-
माहात्म्ये धर्महरिस्वर्णखनिमाहात्म्यवर्णनंनाम चतुर्थोऽध्यायः।।४।।

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—तदनन्तर अपनी कामना पूर्ण हो जाने पर सन्तुष्ट मन वाले कौत्स समुत्सुक होकर राजा को यह वरदान देकर अपने प्रयोजन के अनुसार गुरु के आश्रम में चले गये। राजा भी कौत्स को सन्तुष्ट होते देखकर कृतकृत्य हो गये। राजा ने कौत्स द्वारा छोड़े गये शेष धन को लेकर यथाविधि द्विजगण को प्रदान किया। हे व्यास! ऋषि कौत्स द्वारा इस प्रकार से स्वर्ण खान का माहात्म्य उत्पन्न हो गया।।६९-७१।।

।।चतुर्थ अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

पञ्चमोऽध्यायः

कौत्स वृत्तान्त वर्णन, तिलोदकी माहात्म्य

व्यास उवाच

भगवन्ब्रूहितत्त्वेनकथंनिर्बन्धतोमुनिः। विश्वामित्रोनिजंशिष्यंकौत्संक्रोधेनतादृशम्॥१॥
दुष्प्राप्यमर्थं यत्नेन बहु प्रार्थितवांस्तदा। एतत्सर्वञ्च कथय मयि यद्यस्ति ते कृपा॥२॥

महर्षि व्यास कहते हैं—हे भगवान्! क्रोधपरवश ऋषि विश्वामित्र ने क्यों अपने शिष्य कौत्स से इस प्रकार अनेक यत्न से भी न मिलने वाली धनराशि की दक्षिणा का आदेश क्यों दिया? यदि मेरे प्रति आपकी कृपा है, तब यथायथ रूप से मुझसे कहिये।।१-२।।

अगस्त्य उवाच

श्रृणुद्विजकथामेतांसावधानेन्द्रियःस्वयम्। विश्वामित्रोमुनिश्रेष्ठःसदिव्यज्ञानलोचनः॥३॥
निजाश्रमे तपो दुर्गञ्चकार प्रयतो व्रती। एकदा तमथो द्रष्टुं दुर्वासा मुनिरागतः॥४॥
आगत्य च क्षुधाक्रान्त उच्चैः प्रोवाच स द्विजः। भोजनं दीयतां मह्यं क्षुधापीडितचेतसे।
पायसं शुचि चोष्णञ्च शीघ्रं क्षुधार्त्तिने द्विज!॥५॥
इतिश्रुत्वावचःक्षिप्रंविश्वामित्रःप्रयत्नतः। स्थाल्यांपायसमादायतंसमर्प्यततःस्वयम्॥६॥

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—"हे द्विज! समाहित इन्द्रिय होकर यह कथा सुनिये। दिव्यज्ञाननेत्र मुनीश्वर विश्वामित्र व्रत धारण करके अपने आश्रम में दुश्चर तप कर रहे थे। एक बार महर्षि दुर्वासा विश्वामित्र का दर्शन करने हेतु उनके आश्रम पहुंचे। द्विज दुर्वासा क्षुधार्त्त थे। उन्होंने आश्रम में आते ही उच्च स्वर से विश्वामित्र से कहने लगे—"हे द्विज! मैं क्षुधातुर हूं। क्षुधा से मेरा चित्त व्याकुल है। इसलिये मुझे शीघ्र तनिक उष्ण पायस प्रदान करो।" विश्वामित्र दुर्वासा का यह वाक्य सुनकर उठे तथा उन्होंने प्रयत्नपूर्वक थाली में पायस लेकर दुर्वासा को स्वयं अर्पित किया।।३-६।।

तदादायोत्थितं दृष्ट्वा दुर्वासास्तं विलोकयन्। उवाच मधुरं वाक्यंमुनिंलक्षणतत्परः॥७॥
क्षणं सहस्व विप्रेन्द्र! यावत्स्नात्वा व्रजाम्यहम्।
तिष्ठ तिष्ठक्षणं तिष्ठ आगच्छाम्येष साम्प्रतम्॥८॥
इत्युक्त्वा स जगामैव दुर्वासाः स्वाश्रमं तदा॥९॥
विश्वामित्रस्तपोनिष्ठस्तदा सानुरिवाऽचलः। दिव्यं वर्षसहस्रं स तस्थौ स्थिरमतिस्तदा॥१०॥

तदनन्तर लक्षण तत्पर महर्षि दुर्वासा ने विश्वामित्र को हाथ में पायस लेकर खड़े देखकर उनसे मधुर वाक्य में कहा—"हे विप्रेन्द्र! आप क्षणकाल रुकें। मैं स्नानार्थ जा रहा हूं। जब तक मैं वापस नहीं लौटता, तब तक आप प्रतीक्षा करिये।" महर्षि दुर्वासा ने यह कहकर अपने आश्रम प्रस्थान कर दिया। तपःपरायण विश्वमित्र अचल खड़े रहकर दुर्वासा की प्रतीक्षा करने लगे। इस प्रकार विश्वामित्र दिव्यमान से १००० दिव्यवर्ष पर्यन्त दुर्वासा के लिये प्रतीक्षारत रह गये।"।।७-१०।।

तस्य शुश्रूषणपरो मुनिः कौत्सो यतव्रतः। बभूव परमोदारमतिर्विगतमत्सरः॥११॥
पुनरागत्यस मुनिर्दुर्वासा गतकल्मषः। भुक्त्वा च पायसं सद्यःसजगामनिजाश्रमम्॥१२॥
तस्मिन्गतेमुनिवरेविश्वामित्रस्तपोनिधिः। कौत्संविद्यावतांश्रेष्ठंविससर्जगृहान्प्रति॥१३॥
स विसृष्टो गुरुं प्राह दक्षिणा प्राार्थ्यतामिति।
विश्वामित्रस्तु तं प्राह त्वं किं दास्यसि दक्षिणाम्
दक्षिणा तव शुश्रूषा गृहं व्रज यतव्रतः॥१४॥
पुनः पुनर्गुरुं प्राहशिष्यो निर्बन्धवान्यदा। तदा गुरुर्गुरुक्रुद्धः शिष्यंप्राह चनिष्ठुरम्॥१५॥
सुवर्णस्य सुवर्णस्य चतुर्दश समाहर। कोटीर्मे दक्षिणाविप्र पश्चाद्गच्छ गृहम्प्रति॥१६॥

इसी समय परम उदार बुद्धिवाले, मत्सरशून्य व्रतशील विश्वामित्र की सुश्रूषा में ऋषि कौत्स निरत हो गये। तदनन्तर विगतकल्मष दुर्वासा आये तथा तत्क्षण पायस भक्षण करके अपने आश्रम चले गये। ऋषिप्रवर दुर्वासा के जाने के पश्चात् तपोनिधि विश्वामित्र ने ज्ञानियों में अग्रणी कौत्स को स्वगृह जाने का आदेश दिया। गुरु विश्वामित्र का आदेश सुनकर कौत्स ने विश्वामित्र से कहा ''आप मुझसे दक्षिणा मांगिये'' विश्वामित्र ने कहा ''हे यतव्रत कौत्स! तुमने जो मेरी सेवा की है, उसके द्वारा ही मुझे प्रचुर दक्षिणा प्राप्त हो गयी। अब तुम क्या दक्षिणा दोगे! अब अपने घर चले जाओ।'' तथापि कौत्स ने जब बारम्बार दक्षिणा मांगने के लिये कहा, जिससे गुरु विश्वामित्र क्रोधित हो उठे। उन्होंने शिष्य कौत्स से यह निष्ठुर वाक्य कहा—''हे द्विज! तुम चतुर्दश करोड़ स्वर्ण लाकर मुझे गुरुदक्षिणा प्रदान करो। तत्पश्चात् घर जाओ।''।।११-१६।।

इत्युक्तो गुरुणा कौत्सो विचार्य समुपागतम्।
काकुत्स्थं दिग्विजेतारं ययाचे गुरुदक्षिणाम्।।१७।।
इत्युक्तं ते मुनिवर त्वया पृष्टं हि यत्पुनः। अतोऽन्यच्छृणुतेवच्मितीर्थकारणमुत्तमम्।।१८।।
तस्माद्दक्षिणदिग्भागे सम्भेदःसिद्धसेवितः।
तिलोदकीसरय्वोश्चसङ्गत्या भुवि संश्रुतः।।१९।।
तत्र स्नात्वामहाभागभवन्तिविरजानराः। दशानामश्वमेधानांकृतानांयत्फलंफलंलभेत्।
तदाप्नोति स धर्मात्मा तत्र स्नात्वा यतव्रतः।।२०।।

तदनन्तर कौत्स ऋषि ने गुरु का आदेश सुना तथा मन में विचार करने के पश्चात् वे दिग्विजयी काकुस्थ राजा रघु के यहां गये। हे मुनिवर! आपने पुनः जो प्रश्न किया था, यह उसका उत्तर है। अब अन्य तीर्थकथा कहता हूं। सुनिये। स्वर्णखनि तीर्थ के दक्षिण की ओर सिद्धगणसेवित सम्भेद तीर्थ स्थित है। यहीं तिलोदकी तथा सरयू का संगम भी है। यह त्रिलोकविश्रुत स्थल है। हे महाभाग! यहां स्नान करने वाला मनुष्य विरज हो जाता है। जो व्रतशील व्यक्ति यहां स्नान करता है, उसे दस अश्वमेध यज्ञ इतनी फल प्राप्ति होती है।।१७-२०।।

स्वर्णादिकञ्च यो दद्याद्ब्राह्मणे वेदपारगे।
शुभांगतिमवाप्नोति अग्निवच्चैव दीप्यते।।२१।।
तिलोदकी सरय्वोश्च सङ्गमे लोकविश्रुते।
दत्त्वान्नश्च विधानेन न स भूयोऽभिजायते।।२२।।
उपवासञ्चयः कृत्वा विप्रान्सन्तर्पयेन्नरः। सौत्रामणेश्च यज्ञस्य फलमाप्नोति मानवः।।२३।।
एकाहारस्तु यस्तिष्ठेन्मासं तत्र यतव्रतः। यावज्जीवकृतं पापं सहसा तस्य नश्यति।।२४।।
नभस्यकृष्णामावस्यांयात्रासाम्वत्सरीभवेत्। रामेणनिर्मितापूर्वंनदीसिन्धुरिवापरा।।२५।।
सिन्धुजानांतुरङ्गांणाजलपानायसुव्रत!। तिलवच्छ्याममुदकं यतस्तस्यां सदाबभौ।।२६।।
तिलोदकीति विख्याता पुण्यतोया सदा नदी।

सङ्गमादन्यतो यस्यां तिलोदक्यां शुचिव्रतः।
स्नातो विमुच्यते पापैः सप्तजन्मार्जितैरपि॥२७॥

जो व्यक्ति यहां वेदज्ञ ब्राह्मणों को स्वर्ण आदि दान देता है, उसे उत्तमगति का लाभ होता है तथा वह अग्निवत् दीप्त हो जाता है। जो मानव त्रैलोक्य विश्रुत सरयू तथा तिलोदकी के संगम पर सविधि अन्नदान करता है, उसका पुनः पृथिवी पर जन्म नहीं होता। जो व्यक्ति उपवासी रहकर अन्नादि दान द्वारा द्विजगण को तृप्त करता है, उसे इन्द्रयाग के समान फल की प्राप्ति होती है। (इन्द्रयाग = सौत्रामणि यज्ञ)। जो व्रती मानव एकाहारी रहकर इस संगमस्थल पर एक महीने निवास करता है, उसके जन्मान्तर कृत पापों का नाश हो जाता है। भाद्रमासीय अमावस्या के दिन इस सम्भेद तीर्थ की सम्वत्सरी यात्रा की जाती है। हे सुव्रत! पूर्वकाल में श्रीराम ने सिन्धु देशोत्पन्न घोड़ों के जल पीने के लिये द्वितीय सिन्धु नदी के समान एक नदी का निर्माण किया। इस नदी का जल तिल के समान श्यामवर्ण होने के कारण इस पुण्यतोया नदी को तिलोदकी कहा गया। पवित्र व्रती मानव इस तिलोदकी में स्नान करके सप्त जन्मों के पापों से मुक्त हो जाते हैं।।२१-२७।।

तस्मात्तिलोदकीस्नानं सर्वपापहरं मुने!। कर्त्तव्यं सुप्रयत्नेन प्राणिभिधर्मकाङ्क्षिभिः।
स्नानं दानं व्रतं होमं सर्वमक्षयतां व्रजेत्॥२८॥
इति विविधविधानैस्तीर्थयात्रां क्रमेण प्रथितगुणविकासः प्राप्तपुण्यो विधाय।
हरिमुपहृतभावःपूजयन्सर्वतीर्थं व्रजति परमधाम न्यस्तपापः कथञ्चित्॥२९॥

इति स्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डेऽ-
योध्यामाहात्म्ये तिलोदकीप्रभाववर्णनंनाम पञ्चमोऽध्यायः।।५।।
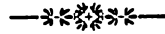
हे मुनिवर! जो धर्माभिलाषी मानव प्रयत्नपूर्वक इस तिलोदकी में स्नान करते हैं, उनका व्रत-होम-दान-स्नानादि सभी अक्षयफल प्रदान करता है। जो मानव इस प्रकार के नाना विधान पालन करता हुआ तीर्थयात्रादि द्वारा तीर्थसेवन एवं हरिपूजा करता है, उसके सभी गुण विकसित तथा प्रथित हो जाते हैं। उसे पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता। उसके पाप दूर हो जाते हैं। वह अनायास हरि के परमधाम को प्राप्त कर लेता है।।२८-२९।।

।।पञ्चम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

षष्ठोऽध्यायः

स्वर्गद्वार, गोप्रतारतीर्थ माहात्म्य, भगवान् के आविर्भाव के कारण, चक्रहरितीर्थ फल वर्णन, सरयू-घर्घरा नदी संगम महत्व वर्णन, राम का अन्तर्ध्यान वर्णन

अगस्त्य उवाच

तस्मात्सङ्गमतोविप्रपश्चिमेदिक्तटेस्थितम्। सीताकुण्डमितिख्यातंसर्वकामफलप्रदम्॥१॥
यत्रस्नात्वानरो विप्र सर्वपापैःप्रमुच्यते। सीतया किलतत्कुण्डंस्वयमेवविनिर्मितम्॥
रामेण वरदानाच्च महाफलनिधिकृतम्॥२॥

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—हे विप्र! तिलोदकी संगम के पश्चिम में सरयूतीर पर सर्वकामफलप्रद विख्यात सीताकुण्ड है। हे विप्र! मानव इस सीताकुण्ड में स्नानोपरान्त समस्त कलुषरहित हो जाता है। स्वयं सीता ने इस कुण्ड का निर्माण किया था। राम का वरदान पाकर यह सीताकुण्ड महाफलनिधिरूप हो गया।।१-२।।

श्रीराम उवाच

शृणु सीते! प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं भुवि यादृशम्।
त्वत्कुण्डस्याऽस्य सुभगे त्वत्प्रीत्या कथयाम्यहम्॥३॥
अत्र स्नानञ्च दानञ्च जपो होमस्तपोऽथवा। सर्वमक्षयतां याति विधानेनशुचिस्मते॥४॥
मार्गकृष्णचतुर्दश्यां तत्र स्नानंविशेषतः। सर्वपापहरं देवि! सर्वदास्नायिनांनृणाम्॥५॥
इति रामो वैरं प्रादात्सीतायै च प्रजाप्रियः। तदाप्रभृति सर्वत्र तत्तीर्थे भुविवर्त्तते॥६॥
सीताकुण्डमिति ख्यातं जनानां परमाद्भुतम्।
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा नूनं राममवाप्नुयात्॥७॥
तत्र स्नानेन दानेन तपसा च विशेषतः। गन्धैर्माल्यैर्धूपदापैर्न्नानाविभवविस्तरैः॥
रामं सम्पूज्य सीताञ्च मुक्तः स्यान्नात्र संशयः॥८॥
मार्गे मासि च स्नातव्यं गर्भवासो न जायते।
अन्यदाऽपि नरः स्नात्वा विष्णुलोकं सगच्छति॥९॥

श्रीराम कहते हैं—"हे सीते! भूतल पर तुम्हारे सीताकुण्ड का क्या अपूर्व माहात्म्य है! हे सुभगे! तुम्हारी प्रसन्नता के लिये मैं जो कहता हूं, श्रवण करो। हे शुचिस्मिते! यहां सीताकुण्ड में विधिवत् स्नान, दान, जप तथा होम करना अक्षय फलप्रद है। हे देवी! मनुष्य इस तीर्थ में स्नान द्वारा समस्त बन्धनरहित हो जाते हैं, तथापि अग्रहायण कृष्णा चतुर्दशी के दिन सीताकुण्ड में स्नान प्रशस्त है।" प्रजाप्रिय राम ने सीता को यही वर प्रदान किया था। तबसे पृथिवी में यह सीताकुण्ड सर्वत्र प्रसिद्ध है तथा मनुष्यों में विस्मय उत्पन्न करने वाला है।

इस तीर्थ में स्नान करने पर मनुष्य निश्चितरूेण राम को प्राप्त करते हैं। मानव यहां स्नान-दान-तप द्वारा तथा विशेषतः गन्ध, माला, धूप, दीप आदि प्रचुर विभव द्वारा राम एवं सीता की सम्यक् पूजा द्वारा मुक्त हो जाते हैं। अग्रहायण मास में सीताकुण्ड में स्नान करने से गर्भवास नष्ट हो जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य काल में भी यहां स्नान द्वारा मनुष्य हरिलोक गमन करता है।।३-९।।

विभोर्विष्णुहरेर्विप्र! रम्ये पश्चिमदिक्तटे। देवश्चक्रहरिर्नाम सर्वाभीष्टफलप्रदः॥१०॥
तस्य चक्रहरेर्विप्र महिमा न हि मानवैः। शक्यो वर्णयितुंधीरैरपि बुद्धिमताम्वरैः॥११॥
ततः पश्चिमदिग्भागे नाम्ना पुण्यं हरिस्मृति। विष्णोरायतनंख्यातंपरमार्थफलप्रदम्॥
यस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते॥१२॥
तयोर्दर्शनतो यान्ति तेषां पापानिदेहिनाम्। तानिपापानियावन्ति कुर्वतेभुवियेनराः॥१३॥
पुरा देवासुरे जाते सङ्ग्रामे भृशदारुणे। दैत्यैर्वरमदोत्सिक्तैर्देवायुधि पराजिताः॥१४॥
तेषां पलायमानानां देवानामग्रणीर्हरः। संस्तभ्यचैवतान्सर्वान्पुरस्कृत्याम्बुजासनम्॥१५॥

हे विप्र! सीताकुण्ड के पश्चिम की ओर सरयू तट पर विभु विष्णु हरि का सर्व अभीष्ट फलदायक चक्रहरितीर्थ अवस्थित है। हे द्विज! ज्ञानी तथा धीर मनुष्य भी इस चक्रहरि की महिमा का वर्णन नहीं कर सकते। उसके पश्चिम में हरिस्मृति तीर्थ है। यहां विष्णु का एक प्रसिद्ध आयतन (पवित्र स्थल) है। यह तीर्थ परमार्थ फलप्रद है। चक्रहरि तथा हरिस्मृति—हे दोनों तीर्थ ऐसे हैं, जिनके दर्शनमात्र से व्यक्ति के देहस्थ पाप दग्ध हो जाते हैं तथा पृथिवी पर उसने जो भी पाप किया है, वे सभी विलीन हो जाते हैं। पूर्वकाल में सुरों-असुरों के बीच अतीव दारुण संग्राम हुआ था। वर पाकर मदोन्मत्त हो गये असुरों से देवगण परास्त होकर यहां से पलायन कर गये थे। देवगण को भागते देखकर देवगण में प्रमुख प्रभु त्रिलोचन ने उनको पलायन से रोका तथा उनको साथ लेकर क्षीरसागर के किनारे शेषशायी विष्णु के समीप पहुंचे।।१०-१५।।

क्षीरोदशायिनं विष्णुं शेषपर्य्यङ्कशायिनम्। लक्ष्योपविष्टं पार्श्वे च चरणाम्बुजहस्तया॥१६॥
नारदाद्यैर्मुनिवरैरुद्गीतगुणगौरवम्। गरुडेन पुरःस्थेनानिशमञ्जलिना स्तुतम्॥१७॥
क्षीराब्धिजलकल्लोलमदबिन्द्वङ्कितांम्बरम्। तारकोत्करविस्फारतारहारविराजितम्॥१८॥
पीताम्बरमतिस्मेरविकाशद्भावभावितम् ।
विभ्रतं कुण्डलं स्थूलं कर्णाभ्यां मौक्तिकोज्ज्वलम्॥१९॥
रत्नवल्लीमिव स्वच्छां श्वेतद्वीपनिवासिनीम्। किरीटं पद्मरागाणां वलयं दधतं परम्॥२०॥
मित्रस्य राहुवित्रासनिवर्त्तनमिवाऽपरम्। सकौस्तुभप्रभाचक्रं विभ्राणम्प्रवलारुणम्॥२१॥
पराञ्चतुर्मुखोत्पत्तिकल्पसंकल्पनामिव। शरणंस जगामाऽऽशुविनीतात्मास्तुवन्निति॥२२॥
तस्मिन्नवसरेशम्भुःदेवगणैःसह। तुष्टाव प्रयतोभूत्वा विष्णुं जिष्णुंसुरद्विषाम्॥२३॥

वहां देवताओं ने देखा कि भगवान् के चरणकमलों को हाथ में लिये लक्ष्मी उनके पार्श्व में उपस्थित हैं। नारदादि मुनिगण उनके गुणगौरव का गायन कर रहे हैं। गरुड़ उनके पुरोभाग में बैठे हाथ जोड़े उनका स्तव

कर रहे हैं। क्षीरसागर के जल की लहरों के छींटों से उनके वस्त्र आर्द्र हो रहे हैं। तारों के चमन चमकीले बालू के कण उनके शरीर पर पड़कर ताराहार की शोभा धारण कर रहे हैं। उनका परिधान पीतवर्ण है। मुख ईषत् हास्ययुक्त हैं तथा उस पर एक मनोहर भाव का विकास होता है। उन्होंने कर्णद्वय में मुक्ता के समान उज्वल कुण्डल धारण किया है। उनके मस्तक पर किरीट विराजित है। हाथों में उत्तम पद्मराग का वलय विराजमान है। वक्ष पर प्रभायुक्त कौस्तुभ विराजमान है। उन्होंने हाथों में चक्र धारण कर रक्खा है। यह देखकर सूर्य मानो राहुग्रास से छूट गये, यह प्रतीत होता है। उस समय विनीतात्मा प्रभु शंकर स्तव करते हुये शीघ्र उनके शरणापन्न हो गये। वे सुरगण के साथ उन प्रभु विष्णु की स्तुति करने लगे।।१६-२३।।

ईश्वर उवाच

संसारार्णवसंतारसुपर्णमुखदायिने। मोहतीव्रतमोहारिचन्द्राय हरये नमः॥२४॥
स्फुरत्सम्विन्मणिशिखां चित्तसङ्गतिचन्द्रिकाम्। प्रपद्ये भगवद्भक्तिमानसोद्यानवाहिनीम्॥२५॥
हेलोल्लसत्समुत्साहशक्तिंव्याप्तजगत्त्रयम्। यापूर्वकोटिर्भावानांसत्वानांवैष्णवीतिवा॥२६॥
पवनान्दोलिताम्भोजदलपर्वान्तवर्त्तिनाम्। पततामिवजन्तूनांस्थैर्यमेका हरिस्मृतिः॥२७॥
नमः सूर्य्यात्मने तुभ्यं साम्वित्किरणमालिने। हृत्कुशेशयकोषश्रीसमुन्मेषविधायिने॥२८॥
नमस्तस्मै यमवते योगिनांगतये सदा। परमेशाय वै पारे सहसां तमसां तथा॥२९॥
यज्ञाय भुक्तहविष ऋग्यजुःसामरूपिणे। नमः सरस्वतीगीतदिव्यसद्गुणशालिने॥३०॥

ईश्वर कहते हैं—जो संसार सागर से उद्धार करते हैं, गरुड़ जिनकी कृपा से सुखलाभ करते हैं, उन श्रीहरि को प्रणाम! हे भगवान्! मैं ज्ञानमणि, शिखायुक्त चित्तसंगतिरूपा, चन्द्रिकाशालिनी, मानसोद्यान में विचरण करने वाली भगवद्भक्ति का आश्रय लेता हूं। उनकी कल्पना श्वेतद्वीपवासिनी स्वच्छ रत्नवेदी के समान विपुला है। चतुरानन का सृजन उनका एक उत्तम संकल्प मात्र है! जिनकी उल्लासशक्ति त्रिजगत् को व्याप्त करती है, जिनकी वैष्णवी शक्ति के बल से पूर्व में कोटि-कोटि प्राणिगण सृष्ट हुये हैं, जिन हरि की स्मृति हृदय में धारण करके पवनान्दोलित पद्मदल (हवा के झोकों से) के पर्वों के समान क्षीण होते रहने वाले (वायु के थपेड़ों से टूटते रहने वाले) प्राणीगण को भी स्थिरता का लाभ हो जाता है, उन श्री हरि को प्रणाम! हे भगवान्! आप सूर्यात्मा हैं। समस्त ज्ञान आपकी किरणें हैं। आपकी ज्ञानरूप किरण द्वारा ही हृदय के पद्मकोष की शोभा विकसित होती है। आपको प्रणाम! हे परमेश! आप योगीगण में अग्रणी हैं। आप ही सदैव योगीगण की गति हैं। महान्तम रूप सत्ता के उस पार आपकी सत्ता विद्यमान है। हे भगवान्! आप सूर्यात्मा हैं। समस्त ज्ञान समूह आपकी किरणें हैं। इन किरणों से हृदयस्थ पद्मकोष की शोभा का विकास होता है। आपको प्रणाम! हे परमेश! आप योगीगण के अग्रणी तथा योगियों की गति हैं। महान् तमस के भी परपार आपकी सत्ता विद्यमान रहती है। आपको प्रणाम! हे प्रभु! आप ही यज्ञभुक्, यज्ञ तथा ऋक्-यजुः एवं सामरूपी हैं। देवी सरस्वती गीतों द्वारा आप के गौरव का गायन करती रहती हैं। आपको प्रणाम!।२४-३०।।

शान्ताय धर्मनिधये क्षेत्रायाऽमृतात्मने। शिष्ययोगप्रतिष्ठाय नमो जीवैकहेतवे।
घोराय मायाविधये सहस्त्रशिरसे नमः॥३१॥

योगनिद्रात्मनेनाभिपद्मोद्भूतजगत्सृजे। नमः सलिलरूपाय कारणाय जगत्स्थितेः॥३२॥
कार्यमेयाय बलिने जीवाय परमात्मने। गोप्त्रे प्राणाय भूतानां समो विश्वायवेधसे॥३३॥
दृप्ताय सिंहवपुषे दैत्यसंहारकारिणे। वीर्यायाऽनन्तमनसे जगद्धावभृते नमः॥३४॥

हे शान्त! आप धर्मनिधि हैं। आप क्षेत्रज्ञ, अमृतात्मा हैं। आप से ही जीवसमूह समुद्भूत हैं तथा आपके ही शिष्यरूपेण होकर आपके ही उपदेश द्वारा शिक्षा ग्रहण करते हैं। अर्थात् आप ही गुरुरूप भी हैं। जो माया का विधान करके मनुष्य के समक्ष घोररूपी हैं, जिनके सहस्र मस्तक हैं तथा जो योगनिद्रा में सो रहे हैं, जिनके नाभिकमल से लोक पितामह ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई है, जो जगत् का सृजन करते हैं, जो जगत्कारण हैं, उन जलरूपी श्रीहरि को प्रणाम! कार्य द्वारा जिनका परिमाण होता है (अनुभव होता है), जो जीव तथा परमात्मा—इन दोनों में विराजमान हैं, जो जीवगण के जीवन तथा गोप्ता हैं, मैं उन विश्वात्मा भगवान् वेधा को प्रणाम करता हूं! जो प्रदीप्त सिंह शरीर धारण करके असुरों के प्राण का संहार करते हैं, मन जिनके बल-विक्रम की सीमा को नहीं जाना जा सकता, जो जगत् को धारण करते हैं, उन हरि को प्रणाम!।।३१-३४।।

संसारकारणाज्ञानमहासन्तमसच्छिदे। अचिन्त्यधाम्ने गुह्याय रुद्रायात्युद्विजेनमः॥३५॥
शान्ताय शान्तकल्लोलकैवल्यपददायिने। सर्वभावातिरिक्ताय नमः सर्वमयात्मने॥३६॥
इन्दीवरदलश्यामं स्फूर्जत्किञ्जल्कविभ्रमम्।
बिभ्राणं कौस्तुभं विष्णुं नौमि नेत्ररसायनम्॥३७॥

हे प्रभो! अज्ञान ही संसार का कारण है। आप ही उस घोर अज्ञानान्धकार का निराकरण करते हैं। आपका निवास स्थान गुह्य है तथा चिन्तन से अतीत है। आप रुद्र हैं। कोई भी आपमें उद्वेग को जन्म नहीं दे सकता। आपको प्रणाम! हे शान्त! आप की शान्त कल्लोल ही कैवल्य प्रदाता है। आप सर्वमय होकर भी सबसे परे हैं। आपको प्रणाम! जो नीलकमलवत् श्याम हैं, मनोरम केश द्वारा जिनका शरीर अत्यधिक शोभित है, जो कौस्तुभधारी हैं, मैं उन नेत्रों के लिये रसायनरूप विष्णु को प्रणाम करता हूं।।३५-३७।।

अगस्त्य उवाच

इति स्तुतः प्रसन्नात्मा वरदो गरुडध्वजः। ववर्ष दृष्टिसुधया सर्वान्देवान्कृपान्वितः।
उवाच मधुरं वाक्यं प्रश्रयावनतान्सुरान्॥३८॥

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—वर देने वाले गरुड़ध्वज हरि शंकर द्वारा इस प्रकार से स्तुत होकर प्रसन्न हो गये। उन्होंने देवगण की ओर अपनी दृष्टि रूपी सुधा का वर्षण किया। तत्पश्चात् श्रीहरि ने देवगण से यह मधुर वाक्य कहा।।३८।।

श्रीभगवानुवाच

जानामि विबुधाः सर्वमभिप्रायं समाधितः। दैतेयैर्विक्रमाक्रान्तं पदं समरदर्पितैः॥३९॥
सबलैर्बलहीनानां प्रतापो विजितःपरैः। साम्प्रतं तु विधास्यामितपोयुष्मद्बलायवै॥४०॥
अयोध्यानगरेगत्वा करिष्येतपउत्तमम्। गुप्तो भूत्वा भवत्तेजोविवृद्ध्यैदैत्यशान्तये॥४१॥

भवन्तोऽपि तपस्तीव्रं कुर्वन्त्वमलमानसाः।
अयोध्यां प्राप्यतांदेवादैत्यनाशाय सत्वरम्॥४२॥

श्री भगवान् कहते हैं—हे देवगण! मैंने पूर्व में ही तुम लोगों का हृदयगत् प्रयोजन जान लिया था। युद्ध दर्पित दैत्यों ने अपने पराक्रम से तुम लोगों का पद छीन लिया है। सबल शत्रु ही निर्बलों को अपने प्रभाव से परास्त कर देते हैं। यह स्वाभाविक है। जो भी हो, मैं तुम लोगों की बलवृद्धि के लिये तपस्या अयोध्या में गुप्त रूप से करूंगा। हे देवगण! तुम लोग भी वहां शीघ्र जाकर असुरों के नाश के लिये निर्मल मन होकर तीव्र तप करो।।३९-४२।।

अगस्त्य उवाच

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवान्देवो गरुडवाहनः। अयोध्यामागतः क्षिप्रञ्चकार तप उत्तमम्॥४३॥
गुप्तो भूत्वा यदा विद्वन्सुरतेजोऽभिवृद्धये।
तेन गुप्तहरिर्नाम देवो विख्यातिमागतः॥४४॥
आगतस्य हरेः पूर्वं यत्र हस्ततलाच्च्युतम्। सुदर्शनाख्यं तच्चक्रं तेन चक्रहरिः स्मृतः॥४५॥
तयोर्दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते। हरेस्तेन प्रभावेण देवाः प्रबलतेजसा॥४६॥
जित्वा दैत्याव्रणैः सर्वान्सम्प्राप्य स्वपदान्यथ। रेजिरेविपुलानन्दैरसुरानार्दयंस्ततः॥४७॥
ततः सर्वे समेत्याशुबृहस्पतिपुरस्सराः। देवाः सर्वेऽनमन्मौलिमालार्च्चितपदाम्बुजम्।
हरिं द्रष्टुमथागच्छन्नयोध्यायां समुत्सुकाः॥४८॥

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—गरुड़वाहन श्रीहरि देवगण से यह कहकर अन्तर्ध्यान हो गये तथा शीघ्र अयोध्या आकर उत्तम तप करने लगे। उस समय वे गुप्त रहने के कारण गुप्तहरि कहलाये। उनके अयोध्या आगमन काल में जिस स्थान पर उनके हाथों से चक्र सुदर्शन छूटा था, वह चक्रहरि कहलाया। इन चक्रहरि एवं गुप्तहरि स्थानों के दर्शनमात्र से मानव सर्वपापरहित हो जाता है। तदनन्तर देवगण भी विष्णु के इस तपः प्रभाव से प्रबल हो उठे तथा उन्होंने युद्ध में असुरगण को परास्त करके अपना-अपना पद प्राप्त किया। वे विपुल आनन्दपूर्वक दैत्यों को मर्दित करने के उपरान्त शीघ्रतापूर्वक दैत्यगुरु बृहस्पति देव के निकट आये तथा बृहस्पति आदि प्रमुख देवगण ने अपना-अपना शिर अवनत करके श्रीहरि के चरणों का पूजन किया।।४३-४८।।

आगत्य चततःश्रुत्वानानाविधगुणादरम्। भावैः पुण्यैः समभ्यर्च्यनत्वाप्राञ्जलयस्तदा॥
हरिमेकाग्रमनसा ध्यायन्तो ध्याननिष्ठिताः॥४९॥
तानागतान्समालोक्यपदभक्त्याकृताननतीन्। प्रसन्नः प्राहविश्वात्मापीतवासाजनार्दनः॥५०॥

इसके पश्चात् हरि के प्रति एकाग्रचित्त होकर सभी देवता हरि दर्शनार्थ अयोध्या आये। वहां उन्होंने आदरपूर्वक भगवान् के गुण-गौरव का श्रवण किया तथा अंजलिबद्ध स्थिति में प्रभु के ध्यान में निमग्न हो गये। समागत देवताओं को अपने चरणों में भक्तिपूर्वक नतमस्तक देखकर विश्वात्मा पीताम्बरधारी जनार्दन प्रेमपूर्वक तथा प्रसन्नतापूर्वक कहने लगे।।४९-५०।।

श्रीभगवानुवाच

भोभोदेवाभवन्तश्चचिराद्दिष्ट्याद्यसंगताः। अधुनाभवतामिच्छांकांकरोभिसुराअहम्॥
तद्ब्रूत त्वरिता मह्यं किं विलम्बेन निर्भयाः॥५१॥

श्री भगवान् कहते हैं—हे देवगण! आज भाग्य से दीर्घकाल के उपरान्त तुमलोगों से मिलन हुआ है। सम्प्रति मैं तुम लोगों का क्या इच्छित कार्य पूर्ण करूं? तुम लोग निर्भय होकर अपना कार्य मुझसे कहो। विलम्ब का प्रयोजन नहीं है।।५१।।

देवा ऊचुः

भगवन्देवदेवेश! त्वया सम्प्रति सर्वशः। सर्वं समभवत्कार्यं निष्पन्नं वै जगत्पते!॥५२॥
तथापिसर्वदाभाव्यं नित्यंदेवत्वयाविभो!। अस्मद्रक्षार्थमत्रैव विजितेन्द्रियवर्त्मना॥५३॥
एवमेव सदा कार्यं शत्रुपक्षविनाशनम्॥५४॥

देवगण कहते हैं—हे भगवान्! आप के दर्शन से ही हमारा सभी कार्य सम्पन्न हो गया। हे देवदेव, जगत्पति! तथापि आप हमारी रक्षा के लिये यहां स्थित हो जायें। हे देवदेव! हमारी यह प्रार्थना है कि आप सभी इन्द्रियों को निरुद्ध करते हुये सदा यहां रहकर हमारे शत्रुगण का विनाश करें।।५२-५४।।

श्रीभगवानुवाच

एवमेतकरिष्यामि भवतामरिसञ्जयम्। श्रीमतां तेजसो वृद्धिं करिष्यामिसदासुराः।
कथेयञ्च सदा ख्यातिं लोके यास्यति चोत्तमाम्॥५५॥
अयं नाम्ना गुप्तहरिर्देवो भुवनविश्रुतः। मदीयं परमं गुह्यं स्थानं ख्यातिं समेष्यति॥५६॥
अत्र यः प्राणिनां श्रेष्ठःपुजायज्ञजपादिकम्। करोतिपरयाभक्त्यासयातिपरमांगतिम्॥५७॥
अत्र यः कुरुतेदानं यथाशक्त्या जितेन्द्रियः।
स स्वर्गमतुलंप्राप्यनशोचति कदाचन॥५८॥
अत्र मत्प्रीतये देवाः प्राणिभिर्धर्मकाङ्क्षिभिः।
दातव्या गौः प्रयत्नेन सवत्सा विधिपूर्वकम्॥५९॥
स्वर्णश्रृङ्गी रौप्यखुरी वस्त्रद्वयसमावृता। कांस्योपदोहना ताम्रपृष्ठीबहुगुणान्विता॥६०॥
रत्नपुच्छा दुग्धवती घण्टाभरणभूषिता। अर्चिता गन्धपुष्पाद्यैः सुप्रसन्नाऽमृतप्रजा॥६१॥

श्री भगवान् कहते हैं—हे देवताओं! मैं यही करूंगा। मैं यहां अवस्थित रहकर तुम्हारे शत्रुओं पर विजय तथा श्रीमान् लोगों की तेजोवृद्धि करूंगा। त्रैलोक्य में यह कथा उत्तम प्रसिद्धि लाभ करेगी। मेरा गुप्तहरि नाम त्रैलोक्य प्रसिद्ध होगा। यहां पर जो श्रेष्ठ जीवगण भक्तिपूर्वक पूजा-यज्ञ-जप आदि करेंगे, उनको उत्तम गति का लाभ होगा। जो इन्द्रियजित् मानव यहां यथाशक्ति दान करता है, वह अुतलनीय स्वर्गलोक प्राप्त करता है। उसे कदापि शोक नहीं होता। हे देवगण! धर्माभिलाषी लोग मेरी प्रसन्नता हेतु यहां यथाविधि वत्सयुता गौ दान करें। इस गोदान की एक विशेषता है। गौ को स्वर्णश्रृङ्ग, चांदी का खुर लगाये। दो वस्त्रों से ढाकें। कांस्य का क्रोड़

(बगल का स्थान), ताम्र की पीठ से अनेक सुन्दर सज्जा करे। उसकी पूंछ पर रत्न बांधकर लगाये। वह गौ दूध देने वाली, घंटाधारिणी, गन्धपुष्पादिमाला से अर्चिता हो। वह प्रसन्ना तथा जीवितवत्सा हो।।५५-६१।।

द्विजाय वेदविज्ञाय गुणिने निर्मलात्मने। विष्णुभक्तायविदुषे आनृशंस्यरताय च।।६२।।
ब्राह्मणायच गौर्देया सर्वत्र सुखमश्नुते। न देया द्विजमात्राय दातारं सोऽवपातयेत्।।६३।।
मत्प्रीतयेऽत्र दातव्या निर्मलेनान्तरात्मना। स्नातं यैश्च विशुद्ध्यर्थमत्र मद्भक्तितत्परैः।।६४।।
तेषां स्वर्गतयो नित्यं मुक्तिः करतलेस्थिता।।६५।।
तथा चक्रहरेः पीठे मत्प्रीत्यै दानमुत्तमम्। जपहोमादिकञ्चापि कर्त्तव्यं यत्नतोनरैः।।६६।।
भवन्तोऽपि विधानेनयात्रांकुर्वन्तुसत्तमाः। अस्माद्गुप्तहरेः स्थानान्निकटेसङ्गमेशुभे।।६७।।
प्रत्यग्भागे गोप्रताराद्योजनत्रयसंमिते। घर्घराम्वुतरङ्गिण्या सरयूः सङ्गता यतः।।६८।।
अत्र स्नात्वा विधानेन द्रष्टव्योऽत्र प्रयत्नतः देवो गुप्तहरिर्नाम सर्वकामार्थसिद्धिदः।।६९।।

यह गौ कैसे सुपात्र को दान करना चाहिये, वह कहता हूं। जो ब्राह्मण वेदज्ञ, गुणी, निर्मलात्मा, विष्णुभक्त, विद्वान्, आनृशंस्यरत हों, ऐसे लक्षण वाले द्विज को गौ प्रदान करें। इससे दान देने वाले तथा दान लेने वाले, दोनों को सुख होता है। हरेक ब्राह्मण को यह दान नहीं दे देना चाहिये। क्योंकि अयोग्य को दान देने से दाता का पतन होता है। दाता भी मेरी प्रसन्नतार्थ अमलात्मा होकर दान दें। जो इस स्थान पर मेरी भक्ति के साथ आत्मशुद्धि हेतु स्नान करता है, उसे स्वर्ग की प्राप्ति हो जाती है। मुक्ति तो उसके करतलगत जैसी हैं! इस प्रकार से मेरा चक्रहरितीर्थ भी जाने। वहां मेरी प्रसन्नतार्थ मानव यत्नतः उत्तमदान, जप, होम करे। हे सत्तमगण! तुम लोग भी यथाविधि इन स्थान पर तीर्थयात्रा करके मेरे गुप्त हरि तीर्थ के मनोरम स्थान पर निवास करो। इस गुप्तहरि के पश्चिम की ओर गोप्रतरतीर्थ से योजन परिमित स्थान में घर्घरा नामक जलनदी का सरयू नदी के साथ संगम होता है। इस संगम पर यथाविधान स्नान करके यत्नतः गुप्तहरि का दर्शन करो। इस गुप्तहरि का दर्शन करने से सर्वकामना सिद्धि होती है।।६२-६९।।

अगस्त्य उवाच

इत्युक्त्वान्तर्दधेदेवः पीताम्बरधरोऽच्युतः। देवाअपिविधानेन कृत्वा यात्रांप्रयत्नतः।
अयोध्यायां स्थिता नित्यं हरेर्गुणविमोहिताः।।७०।।

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—पीताम्बरधारी अच्युत हरि यह कहकर अन्तर्हित् हो गये। देवगण भी यथाविधि यात्रा सम्पन्न करने के पश्चात् हरि के गुणों में अनुरक्त सतत् अयोध्या में निवास करने लगे।।७०।।

तदाप्रभृति विप्रेन्द्र! तत्स्थानम्भुवि पप्रथे।
कार्त्तिक्यां तु विशेषेण यात्रा साम्वत्सरी भवेत्।।७१।।
विभार्गुप्तहरेस्तत्र सङ्गमस्नानपूर्विका। गोप्रतारेच तीर्थेऽस्मिन्सरयूघर्घराश्रिते।
स्नात्वा देवोऽर्चनीयोऽयं सर्वकामफलप्रदः।।७२।।
तथा चक्रहरेर्यात्रा कर्त्तव्या सुप्रयत्नतः। मार्गशीर्षस्य विशदे पक्षे हरितिथौ नरैः।।७३।।

एवं यः कुरुते यात्रां विष्णुलोके स मोदते।।७४।।

हे विप्रेन्द्र! तब से यह तीर्थ पृथिवी में प्रसिद्ध हो गया। कार्त्तिकी पूर्णिमा के दिन इन गुप्तहरि की सांवत्सरकी यात्रा होती है। विभुदेव गुप्तहरि तथा ग्रोप्रतार एवं संगम स्थल (घर्घरा तथा सरयू संगम) पर स्नानोपरान्त देवदेव हरि की पूजा करने से सभी कामनायें पूरी हो जाती हैं। मनुष्य यत्न के साथ मार्गशीर्ष मास में हरि की तिथि शुक्ला एकादशी के दिन चक्रतीर्थ जायें। (चक्रहरितीर्थ जायें) जो मनुष्य यह यात्रा करता है, उसे विष्णुलोक की प्राप्ति होती है।।७१-७४।।

श्रीसूत उवाच

एवमुक्त्वा तु विरते मुनौ कलशजन्मनि। कृष्णद्वैपायनो व्यासःपुनराह सविस्मयः।।७५।।

श्री सूत जी कहते हैं—कुम्भजन्मा ऋषि अगस्त्य यह कहकर मौन हो गये। तब कृष्णद्वैपायन व्यास पुनः विस्मयपूर्वक कहने लगे।।७५।।

व्यास उवाच

अत्याश्चर्य्यमयीं ब्रह्मन्कथामेतां तपोधन!। उक्तवानसि येनैतत्साश्चर्य्यं ममममानसम्।।७६।।
विस्तरेण मम ब्रूहि माहात्म्यं परमाद्भुतम्। शृणुसङ्गममाहात्म्यंविप्रेन्द्र! परमाद्भुतम्।।७७।।
स्कन्ददेवाच्छ्रुतं सम्यक्कथयामि तथा तव।।७८।।
दशकोटिसहस्राणि दशकोटिशतानिच। तीर्थानि सरयूनद्या घर्घरोदकसङ्गमे।
निवसन्ति सदा विप्र! स्कन्दादवगतं मया।।७९।।
देवतानां सुराणाञ्च सिद्धानां योगिनां तथा।
ब्रह्मविष्णुशिवानाञ्च सान्निध्यं सर्वदा स्थितम्।।८०।।
तस्मिन्सङ्गमसलिलेनरःस्नात्वासमाहितः। सन्तर्प्यपितृदेवांश्चदत्त्वादानंस्वशक्तितः।।८१।।
हुत्वा वैष्णवमन्त्रेण शुचिर्यत्फलमाप्नुयात्। तदिहैकमना विप्र! शृणु यत्कथयामि ते।।८२।।
अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च। कुरुक्षेत्रे महाक्षेत्रे राहुग्रस्ते दिवाकरे।।८३।।
सुवर्णदाने यत्पुण्यमहन्यहनि तद्भवेत्।।८४।।
अमावास्यांपौर्णमास्यांद्वादश्योरुभयोरपि। अयनेचव्यतीपातेस्नानंवैष्णवलोकदम्।।८५।।
तिष्ठेद्युगसहस्रन्तु पादेनैकेन यः पुमान्। विधिवत्सङ्गमेस्नायात्पौष्यांतदविशेषतः।।८६।।
लम्वतेऽवाक्छिरा यस्तु युगानामयुतं पुमान्।
स्नातानां शुचिभिस्तोयैः सङ्गमे प्रयतात्मनाम्।।८७।।
व्युष्टिर्भवति या पुंसां न सा क्रतुशतैरपि।।८८।।
पौषे मासि विशेषेण स्नानं बहुफलप्रदम्।।८९।।

महर्षि व्यास कहते हैं—हे ब्रह्मन्! आपने अत्युत्तम कथा का वर्णन किया है। हे तपोधन! आपके द्वारा

यह महान् विस्मयप्रद कथा सुनकर मेरा मन विस्मयापन्न हो रहा है। आप कृपया यह परम अद्भुत माहात्म्य विस्तारपूर्वक कहिये।

(यह सुनकर अगस्तय ऋषि कहते हैं—) हे विप्रेन्द्र! अब परम विस्मयजनक संगम माहात्म्य सुनें। मैंने यह स्कन्ददेव से सुना था। वही आपसे कहता हूं। हे विप्र! मैंने भगवान् स्कन्द से सुना था कि इस सरयूसंगम में एकादश-सहस्रकोटितीर्थ सदा विद्यमान रहते हैं। सभी देवता, देवी, सिद्ध, योगी तथा ब्रह्मा-विष्णु-शिव यहां स्थित हैं। हे विप्र! पवित्रसमाहित मन वाले मानव इस संगम जल में स्नान, देव-पितृतर्पण, यथाशक्ति दान एवं वैष्णवमन्त्र से होम करके जिस फल की प्राप्ति करते हैं, वह आपसे कहता हूं। एकाग्र होकर उसे सुनिये। सहस्र अश्वमेध, सैकड़ों बाजपेय तथा महाक्षेत्र कुरुक्षेत्र में सूर्यग्रहणकालीन स्वर्णदान द्वारा जो फल मिलता है। पूर्वोक्त क्रियाकुशल मानव भी प्रतिदिन उतना ही फललाभ करता है। अमावस्या, पूर्णिमा, शुक्ला तथा कृष्णा द्वादशी, अयन एवं व्यतीपात योगों में इस संगमजल में स्नान विष्णुलोकप्रद है। व्यक्ति सहस्रयुग एक पाद में अवस्थित रहकर तप द्वारा जो पुण्यलाभ करता है, पौष पूर्णिमा के दिन मात्र एक बार इस संगम जल में यथाविधि स्नान करके मनुष्य उसके समान फललाभ करता है। मानव अवाक् शिरा तथा लम्बमान होकर दस हजार युग तप करने से जो फललाभ करता है, इस पवित्रजलयुक्त संगम में स्नान करने वाला उसी के समान फललाभ करता है। विशेषतः पौष मास में संगम स्नान अत्यन्त प्रशस्त तथा अनेक फलप्रद हैं। पुरुष १००० यज्ञों द्वारा भी उसके समान पुण्य अर्जित नहीं कर सकता।।७६-८९।।

पौषे मासि विशेषेण यः कुर्यात्स्नानमादृतः।
ब्राह्मणः क्षत्रियोवैश्यः शूद्रो वा वर्णसङ्करः।
स याति ब्रह्मणः स्थानं पुनरावृत्तिवर्जितम्।।९०।।
पौषे मासि तु यो दद्याद् घृताढ्यं दीपमुत्तमम्।
विधिवच्छ्रद्धया विप्र! शृणु तस्याऽपि यत्फलम्।।९१।।
नानाजन्मार्जितं पापं स्वल्पंबह्वपिवाभवेत्। तत्सर्वंनश्यति क्षिप्रं तोयस्थंलवणंयथा।।९२।।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं सन्ततीःसौख्यमुत्तमम्। प्राप्नोतिफलदंनित्यंदीपदःपुण्यभाङ्नरः।।९३।।
यस्तु शुक्लत्रयोदश्यां पौषेऽत्र प्रयतो व्रती। जागरं कुरुतेधीरः स गच्छेद्भवनंहरेः।।९४।।

पौष मास में जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदरपूर्वक स्नान करते हैं, यहां तक कि वर्णसंकर भी स्नान करता है, उन सबको ब्रह्मपद की प्राप्ति होती है। उनका पुनः जन्म नहीं होता। हे विप्र! जो मानव सविधि श्रद्धा के साथ इस संगम में पौषमास में घृत से भरे उत्तम दीपों का दान करता है, उसका पुण्यफल सुनें। अल्प हो, बहुल हो, उसके नाना जन्मार्जित कलुषयुक्त पाप प्रक्रिया विशेष जलस्थित लवण के समान विनष्ट हो जाते हैं। इस तीर्थ में नित्य दीपदान करने वाला व्यक्ति पुण्यभाजन होकर आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, सन्तति, उत्तम सुख प्राप्त करता है। उसके क्रियाकलाप फलप्रद हो जाते हैं। पौष शुक्ल त्रयोदशी के दिन जो व्यक्ति व्रतयुक्त होकर जागरण (रात्रि जागरण) करता है, वह वैकुण्ठ लोक जाता है।।९०-९४।।

जागरं विदधद्रात्रौ दीपं दत्त्वा तु सर्वशः। होमञ्च कारयेद्विप्रो नियतात्माशुचिव्रतः।।९५।।

वैष्णवो विष्णुपूजाञ्च कुर्वञ्छृण्वन्हरेःकथाम्। गीतवादित्रनृत्यैश्च विष्णुतोषणकारकैः।।
कथाभिः पुण्ययुक्ताभिर्जागृयाच्छर्वरीं नरः।।९६।।
ततः प्रभाते विमले स्नात्वा विधिवदादरात्।
विष्णुं सम्पूज्य विप्रांश्च देयं स्वर्णादि शक्तितः।।९७।।
स्वर्णं चाऽन्नञ्च वासांसि योदद्याच्छ्रद्धयाऽन्वितः।
सङ्गमे विधिवद्विद्वान्स याति परमां गतिम्।।९८।।
वर्षे वर्षे तु कर्त्तव्यो जागरः पुण्यतत्परैः।।९९।।
हरिः पूज्यो द्विजाः सम्यक्सन्तोष्याः शक्तितो नरैः।
तेन विष्णोः परातुष्टिः पापानि विफलानि च।
भवन्ति निर्विषाः सर्पा यथा ताक्ष्यस्य दर्शनात्।।१००।।
तत्र स्नातो दिवं याति अत्र स्नातः सुखी भवेत्।।१०१।।
त्रिषु लोकेषु ये केचित्प्राणिनः सर्व एव ते।
तर्प्यमाणाः परां तृतिं यान्ति सङ्गमजैर्जलैः।।१०२।।

अब जागरण का नियम कहते हैं। रात्रि में सर्वत्र दीपदान करके जागरण करना चाहिये। नियतात्मा पवित्र वैष्णव ब्राह्मण द्वारा होम कराये। वे विष्णु पूजा करें। तदनन्तर विष्णु की कथा सुनें। गीत-वाद्य तथा नृत्य आदि से विष्णु को सन्तुष्ट करना चाहिये। मनुष्य को पुण्यमयी विष्णुकथा सुनकर समस्त रात्रि व्यतीत करके विमल प्रभातकाल में यथाविधि स्नान करके विष्णु तथा विप्रगण की पूजा करके यथाशक्ति स्वर्ण आदि दान करना चाहिये। जो मानव संगम में श्रद्धापूर्वक विधिवत् स्वर्ण-अन्न तथा वस्त्रदान करता है, वह परमगति लाभ करता है। इस पुण्योत्सव को समयानुसार मनुष्य प्रतिवर्ष करे। जागरण-हरिपूजन तथा यथाशक्ति द्विजों का सन्तोषसाधन करना चाहिये। यह करने से विष्णु को परम सन्तुष्टि होती है। जैसे गरुड़ को देखकर सर्प का विषनाश होता है, उसी प्रकार इस जागरणादि व्रताचरण द्वारा मानव का कलुषनाश हो जाता है। इस संगम के एक ओर स्नान करने से स्वर्गलाभ होता है। संगम में अन्य ओर स्नान करने का फल है सुख लाभ। लेकिन साक्षात् संगम में स्नान करने पर तीनों लोक में प्राणीगण परम तृप्त होते हैं।।९५-१०२।।

भूतानामिहसर्वेषां दुःखोपहतवेतसाम्। गतिमन्वेषमाणानां न सङ्गमसमा गतिः।।१०३।।
सप्तावरान्सप्त.परान्पुरुषश्चाऽऽत्मना सह। पुंसस्तारयते सर्वान्सङ्गमे स्नानमाचरन्।।१०४।।
जात्यन्धैरिह ते तुल्यास्तथा पङ्गुभिरेव च। समेत्याऽत्रचर्नस्नान्ति सरयूघर्घरसङ्गमे।।१०५।।
वर्णानां ब्राह्मणो यद्वत्तथा तीर्थेषु सङ्गमः। सरयूघर्घरायोगे वैष्णवस्थो नरः सदा।१०६।।
अत्र स्नानेन दानेन यथाशक्त्याजितेन्द्रियः। होमेनविधियुक्तेननरःस्वर्गमवाप्नुयात्।।१०७।।
नरो वा यदि वा नारी विधिवत्स्नानमाचरेत्।
स्वर्गलोकनिवासो हि भवेत्तस्य न संशयः।।१०८।।

यथा वह्निर्दहेत्सर्वं शुष्कमार्द्रमथाऽपिवा। भस्मीभवन्तिपापानितत्समागममज्जनात्।।१०९।।

जो दुःखग्रस्त व्यक्ति मानवगण उत्तम गति का अन्वेषण करते हैं, उनके लिये संगम के समान उत्तम गति नहीं है। इस संगम स्नान को करने पर सात पूर्व पीढ़ी तथा सात आगे की पीढ़ी की आत्मा का त्राण हो जाता है। जो सरयू-घाघरा संगम में आते हैं, तथापि स्नान नहीं करते, वे इस पाप प्रभाव से पंगु हो जाते हैं। वर्ण में जैसे ब्राह्मण श्रेष्ठ है, उसी प्रकार तीर्थों में यह सरयू-घाघरा संगम श्रेष्ठ है। मानव सरयू-घर्घरा संगम का संगलाभ करके सतत् वैकुण्ठ लोक में निवास करते हैं। जितेन्द्रिय मानव इस संगम तीर्थ में यथाशक्ति सविधि स्नान-दान तथा होम करके स्वर्गलाभ करते हैं। मनुष्य अथवा नारी इस संगम में सविधि स्नान करके स्वर्गलोक में स्थिति प्राप्त करते हैं। इसमें सन्देह नहीं है। जैसे अग्नि शुष्क तथा आर्द्र, सभी प्रकार के काष्ठ को दग्ध कर देता है, उसी प्रकार सरयू-घाघरा संगम स्थल में स्नान करके समस्त पापों को भस्म कर देते हैं।।१०-३-१०९।।

एकतः सर्वतीर्थानि नानाविधिफलानि वै। सरयूघर्घरोत्पन्नसङ्गमस्त्वधिको भवेत्।।११०।।
सर्वतीर्थावगाहस्यफलंयादृक्स्मृतं श्रुतौ। तादृक्फलंनृणांसम्यग्भवेत्सङ्गममज्जनात्।।१११।।

एक ओर समस्त तीर्थों की फलराशि को एकत्र किया जाये, तथापि इस संगमस्नान का फल उससे अधिक होता है। वेद में समस्त तीर्थों में स्नान का जो फल कहा गया है, इस संगम स्नान द्वारा मानव उसी के समान फल लाभ कर लेता है।।११०-१११।।

गोप्रताराभिधं तीर्थमपरं वर्त्ततेऽनघ!। सन्निधौ सङ्गमस्यैव महापातकनाशनम्।।११२।।
यत्रस्नानेन दानेन न शोचति नरः क्वचित्। गोप्रतारसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति।।११३।।
वाराणस्यां यथा विद्वन्वर्त्तते मणिकर्णिका।
उज्जयिन्यां यथा विप्र! महाकालनिकेतनम्।।११४।।
नैमिषे चक्रवापी तु यथा तीर्थतमास्मृता। अयोध्यायांतथाविप्रगोप्रताराभिधंमहत्।।११५।।
यत्र रामाज्ञया विद्वन्साकेतनगरीजनाः। अवापुः स्वर्गमतुलं निमज्ज्य परमाम्भसि।।११६।।

हे अनघ! गोप्रतर नामक जो अन्य एक तीर्थ इस संगम के पास विद्यमान हैं, यह गोप्रतर भी उसी संगमतीर्थ ऐसा महापातक नाशक है। मानव यहां स्नान तथा दान द्वारा कभी भी शोकग्रस्त नहीं होता। गोप्रतर के समान पुण्यतीर्थ अन्यत्र कहीं भी नहीं है। होगा भी नहीं! हे विद्वान्! जैसे वाराणसी में मणिकर्णिका का तीर्थ है, हे विप्र! उज्जयिनी में जिस प्रकार से महाकाल मन्दिर है, उसी प्रकार से जैसे नैमिषारण्य में चक्रवापी है, उसी प्रकार से अयोध्या में महातीर्थ गोप्रतर तीर्थ है। हे विद्वान्! राम की आज्ञा से साकेतनगरवासी (अयोध्यावासी) मनुष्यों ने गोप्रतर में स्नान करके अतुल स्वर्गलाभ किया था।।११२-११६।।

व्यास उवाच

अवापुस्ते कथं स्वर्गं साकेतनगरीजनाः। कथञ्च राघवो विद्वन्नेतत्कथय सुव्रत!।।११७।।

महर्षि व्यास कहते हैं—हे सुव्रत! साकेत के नागरिक लोगों ने किस प्रकार से स्वर्ग गमन किया तथा राम ने किस प्रकार से उन सबको स्वर्ग जाने का आदेश दिया? यह सब कृपया कहिये।।११७।।

अगस्त्य उवाच

सावधानः श्रृणु मुने! कथामेतांसुविस्तरात्। यथाजगामरामोऽसौस्वर्गंसचपुरीजनः॥११८॥
पुरा रामो विधायैव देवकार्य्यमतन्द्रितः। स्वर्गं गन्तुं मनश्चक्रे भ्रातृभ्यांसहवीरधीः॥११९॥
ततो निशम्य चारेण वानराः कामरूपिणः। ऋक्षगोपुच्छरक्षांसि समुत्पेतुरनेकशः॥१२०॥
देवगन्धर्वपुत्राश्च ऋषिपुत्राश्च वानराः। रामक्षयं विदित्वा तु सर्व एव समागताः॥१२१॥

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—हे मुनिवर! सावधान होकर श्रवण करिये। राम जिस प्रकार से अपने नगरवासीगण के साथ स्वर्ग गये थे, मैं वह सब विस्तारपूर्वक कहता हूं। पूर्वकाल में वीर आलस्यरहित भगवान् राम ने देवकार्य सम्पन्न करने के अनन्तर भाई भरत एवं शत्रुघ्न के साथ स्वर्ग (स्वधाम) गमन किया। तदनन्तर कामरूपी वानरगण कुछ लोगों से इसका समाचार पाकर वहां आये। क्रमशः अनेक ऋक्ष एवं गोपुच्छ राक्षसगण, देवता तथा गन्धर्वपुत्र, ऋषिकुमार तथा अन्य वानरगण भी यह संवाद पाकर सभी राम के पास आये। तदनन्तर वानरयूथपतियों ने राम का स्वधाम गमन का अभिप्राय जानकर उनसे कहा।।११८-१२१।।

ते राममनुगत्योचुः सर्वे वानरयूथपाः। तवाऽनुगमने राजन्सम्प्राप्ताःस्मइहानघ!॥१२२॥
यदि राम विनास्माभिर्गच्छेस्त्वं पुरुषर्षभ!। सर्वे खलुहताः स्याम दण्डेन महतानृप॥१२३॥

वानरयूथपतिगण कहते हैं—"हे निष्पाप! हम सभी आपका अनुगमन करेंगे। यदि हमारा परित्याग करके आप अपने धाम में जाते हैं, तब हे पुरुषर्षभ राम! आपके इस परलोकगमन रूप महादण्डपात से तो निश्चय ही हम सब मृत हो जायेंगे।।१२२-१२३।।

श्रुत्वा तु वचनं तेषामृक्षवानररक्षसाम्। विभीषणमुवाचाऽथ राघवस्तत्क्षणं गिरा॥१२४॥
यावत्प्रजाधरिष्यन्ति तावदेव विभीषण!। कारयस्बमहद्राज्यंलङ्कांत्वंपालयिष्यसि॥१२५॥
शाधि राज्यञ्च खल्वेतन्नान्यथा मे वचः कुरु।
प्रजास्त्वं रक्ष धर्मेण नोत्तरं वक्तुमर्हसि॥१२६॥
एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थोहनुमन्तमथाब्रवीत्। वायुपुत्रचिरञ्जीवमाप्रतिज्ञांवृथाकृथाः॥१२७॥
यावल्लोका वदिष्यन्ति मत्कथां वानरर्षभ!।
तावत्त्वंधारयप्राणान्प्रतिज्ञांप्रतिपालयन् ॥१२८॥
मैन्दश्च द्विविदश्चैव अमृतप्राशनावुभौ। यावल्लोका धरिष्यन्ति तावदेतौ धरिष्यतः॥१२९॥
पुत्रपौत्राश्च येऽस्माकं तान्रक्षन्त्विह वानराः।
एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थः सर्वानथ च वानरान्।
मया सार्धं प्रयातेति तदा तान्राघवोऽब्रवीत्॥१३०॥

राघव राम ने ऋक्ष, वानर तथा राक्षसों का यह दुःखपूर्ण कथन सुनकर तत्क्षण विभीषण से कहा—"हे विभीषण! जब तक सभी लोक विद्यमान हैं, तब तक तुम इस लंका महाराज्य का शासन तथा पालन करो। तुम धर्म का अवलम्बन लेकर प्रजाजन का शासन-पालन करो। मेरे वाक्य को अन्यथा नहीं करना। इस विषय

में तुम्हारा कोई उत्तर देना भी उचित नहीं है।'' तदनन्तर काकुस्थ राम ने विभीषण को यह आदेश देकर हनुमान से कहा।

भगवान् कहते हैं—''हे वायुतनय! तुम चिरंजीवी हो जाओ। तुम प्रतिज्ञा वृथा नहीं करना। हे वानरर्षभ! जब तक लोकों में मेरी कथा होती रहे, तुम अपनी प्रतिज्ञा का पालन करके तब तक जीवन धारण करो। ये मैन्द तथा द्विविद अमृतप्राशी वानर अमर होकर जब तक त्रैलोक्य का अस्तित्व हो, तब तक जीवन धारण करो। अन्यान्य वानरगण यहीं विद्यमान रहकर मेरे पुत्र-पौत्रों की रक्षा करें। रघुवर काकुस्थ राम ने यह कहकर अन्य वानरगण से पुनः कहा—''तुम लोग मेरे साथ चलो।''।।१२४-१३०।।

प्रभातायां तु शर्वर्य्यां पृथुवक्षा महाभुजः।
रामः कमलपत्राक्षः पुरोधसमथाऽब्रवीत्॥१३१॥

अग्निहोत्राणि यान्त्वग्रेदीप्यमानानिसर्वशः। वाजपेयातिरात्राणिनिर्यान्तुचममाग्रतः॥१३२॥

ततो वसिष्ठस्तेजस्वी सर्वं निश्चित्य चेतसा।
चकार विधित्कर्म महाप्रास्थानिकम्विधिम्॥१३३॥

ततः क्षौमाम्बरधरो ब्रह्मचर्यसमन्वितः। कुशानादाय पाणिभ्यां महाप्रस्थानमुद्यतः॥१३४॥

न व्याहरच्छुभं किञ्चिदशुभं वा नरेश्वरः। निष्क्रम्यनगरात्तस्मात्सागरादिवचन्द्रमाः॥१३५॥

रजनी व्यतीत होने पर प्रभात काल में विशालवक्षस्थल वाले महाभुज राजीवलोचन राम ने अपने पुरोहित महर्षि वसिष्ठ से कहा—''मैं महाप्रस्थान करूंगा। बाजपेय, अतिरात्र आदि दीप्यमान अग्निहोत्र मेरे आगे-आगे चले।'' राम का वाक्य सुनकर तेजस्वी महर्षि वसिष्ठ ने तब मन ही मन तात्कालिक अनुष्ठेय क्रिया-कलाप का निश्चय करके यथाविधि महाप्रस्थानकालिक विविध अनुष्ठान सम्पन्न किया। तदनन्तर महाप्रस्थानोद्यत राम ने क्षौम वस्त्र धारण किया तथा ब्रह्मचर्य युक्त होकर दोनों हाथों में कुश धारण किया। नरनाथ राम मौनी हो गये। उस काल में उनके मुख से शुभ-अशुभ आदि कोई भी वाक्य उच्चरित नहीं हो रहा था। तब जैसे चन्द्रमा सागर से उदित होते हैं, उसी प्रकार वे अयोध्या नगरी से बहिर्गत हो गये।।१३१-१३५।।

रामस्य सव्यपार्श्वे तु सपद्मा श्रीः समाश्रिता।
दक्षिणे ह्रीर्विशालाक्षी व्यवसायस्तथाऽग्रतः॥१३६॥

नानाविधायुधान्यत्र धनुर्ज्याप्रभृतीनि च। अनुव्रजन्ति काकुत्स्थं सर्वेपुरुषविग्रहाः॥१३७॥

उस समय राम के वामपार्श्व में कमलालया कमला, दाहिने पार्श्व में विशालाक्षी लज्जा चल रहीं थी। उनके सामने अविचलित अध्यवसाय, नाना आयुध, धनुष, गुण आदि (गुण=धर्म) पुरुष विग्रह धारण करके चल रहे थे। इन सबने महापुरुष राम का अनुगमन किया।।१३६-१३७।।

वेदो ब्राह्मणरूपेणसावित्रीसव्यदक्षिणे। ॐकारोऽथवषट्कारःसर्वेरामं तदाऽव्रजन्॥१३८॥

ऋषयश्चमाहात्मानःसर्वे चैवमहीधराः। अनुगच्छन्तिकाकुत्स्थंस्वर्गद्वारमुपसिथतम्॥१३९॥

तथानुयान्ति काकुत्स्थमन्तःपुरगताःस्त्रियः। सवृद्धाबालदासीकाःसपर्षद्द्वाररक्षकाः॥१४०॥

सान्तःपुरश्च भरतः शत्रुघ्नसहितो ययौ। रामं व्रजन्तमागम्य रघुवंशमनुव्रताः॥१४१॥

ततोविप्रामहात्मानःसाग्निहोत्राःसमन्ततः। सपुत्रदाराःकाकुत्स्थमनुगच्छन्तिसर्वशः॥१४२॥

मन्त्रिणो भृत्ययुक्ताश्च सपुत्राः सहबान्धवाः।
सर्वे ते सानुगाश्चैव ह्यनुगच्छन्ति राघवम्॥१४३॥

ततः सर्वाः प्रकृतयो हृष्टपुष्टजनावृताः। गच्छन्तमनुगच्छन्ति राघवं गुणरञ्जिताः॥१४४॥

तथा प्रजाश्च सकलाः सुपुत्राश्चसबान्धवाः। राघवस्यानुगाश्चासन्दृष्ट्वाविगतकल्मषम्॥१४५॥

ब्राह्मण विग्रह धारण करके वेद उन प्रभु के बायीं ओर तथा सावित्री दक्षिण ओर चल रही थीं। ॐकार, वषट्कार आदि सभी राम का अनुगमन कर रहे थे। महात्मा ऋषि तथा महीधर आदि भी उनके साथ चल रहे थे। वे सभी स्वर्गद्वार तीर्थ तक आये। इसके अतिरिक्त समस्त अन्तःपुरवासिनी स्त्री, बाल-वृद्ध, दास-दासी, पार्षद तथा द्वार रक्षक भी प्रभु राम के पीछे चल रहे थे। तब शत्रुघ्न भी भरत के साथ नगर द्वार से बाहर निकले। अन्तःपुरवासीगण ने भी उनका अनुगमन किया था। वे सभी क्रमशः आकर राम के साथ चलने लगे। तदनन्तर चतुर्दिक् से पुत्र-स्त्री सहित अग्निहोत्री महात्मा विप्र अपने-अपने भृत्य, बन्धुगण, पुत्र, पत्नी, बन्धु-बान्धव युक्त होकर साथ चलने लगे। प्रजाजन राम के पीछे-पीछे पापरहित होकर चलते जा रहे थे।।१३८-१४५।।

स्नाताः शुक्लाम्बरधराः सर्वेप्रयतमानसाः।
कृत्वा किलकिलाशब्दमनुयाताश्च राघवम्॥१४६॥

न कश्चित्तत्र दीनोऽभून्न भीतोनाऽतिदुःखितः। प्रहृष्टामुदिताः सर्वेबभूवुःपरमाद्भुताः॥१४७॥

द्रष्टुकामाश्चनिर्वाणं राज्ञो जनपदास्तथा।
सम्प्राप्तास्तेऽपिदृष्ट्वैव नभोमार्गेणचक्रिणा॥१४८॥

ऋक्षवानररक्षांसि जनाश्च पुरवासिनः। आगत्य परया भक्त्या पृष्ठतः समुपाययुः॥१४९॥

तानिभूतानि नगरेह्यन्तर्धानगतान्यपि। राघवं तेऽप्यनुययुः स्वर्गद्वारमुपस्थितम्॥१५०॥

यानि पश्यन्ति काकुत्स्थं स्थावराणि चराणि च।
सत्त्वानि स्वर्गगमने मतिं कुर्वन्ति तान्यपि॥१५१॥
नाऽऽसीत्सत्त्वमयोध्यायां सुसूक्ष्ममपि किञ्चन।
यद्राघवं नाऽनुयाति स्वर्गद्वारमुपस्थितम्॥१५२॥

सभी ने स्नान करके श्वेत वस्त्र धारण किया था तथा सर्वत्र किलकिलाहट गूंजने लगी। वहां कोई भी दीन, भयभीत, किंवा दुःखित नहीं था। सभी हर्षित, मुदित तथा महाविस्मित थे। उन निर्वाणोन्मुख महापुरुष का दर्शन करने की लालसा के साथ नाना जनपद के राजा आये। सभी उनका दर्शन कर रहे थे। ऋक्ष, वानर, राक्षस तथा पुरवासीगण परम भक्ति के साथ उन महापुरुष के पीछे-पीछे चलते जा रहे थे। इस प्रकार अयोध्यापुरी जनहीन हो गयी। सभी राम का अनुगमन करते स्वर्गद्वार तक आये। सभी स्थावर तथा चर प्राणीगण काकुत्स्थ राम का दर्शन करने लगे। सभी के प्राणों में एक अपूर्व स्वर्ग में जाने की कामना जाग्रत हो गयी। राघव का अनुगमन करके स्वर्गद्वार तीर्थ तक न जाने वाला ऐसा कोई सूक्ष्म प्राणी तक अयोध्या में नहीं बचा।।१४६-१५२।।

अथार्द्धयोजनंगत्वा नदीं पश्चान्मुखो ययौ।
सरयूं पुण्यसलिलां ददर्श रघुनन्दनः॥१५३॥
अथ तस्मिन्मुहूर्ते तु ब्रह्मालोकपितामहः। सर्वैः परिवृतोदेवैर्ऋषिभिश्च महात्मभिः।
आययौ तत्र काकुत्स्थं स्वर्गद्वारमुपस्थितम्॥१५४॥
विमानशतकोटिभिर्दिव्याभिःसर्वतोवृतः। दीपयन्सर्वतोव्योमज्योतिर्भूतमनुत्तमम्॥१५५॥
स्वयंप्रभैश्च तेजोभिर्महद्भिःपुण्यकर्मभिः।
पुण्या वाता ववुस्तत्रगन्धवन्तः सुखप्रदाः॥१५६॥
सपुण्यपुष्पवर्षञ्च वायुयुक्तं महाजवम्। गन्धर्वैरप्सरोभिश्च तस्मिन्सूर्यउपस्थितः॥१५७॥
सरयूसलिलं रामः पद्भ्यां स समुपास्पृशत्।
ततो ब्रह्मा सुरैर्युक्तं स्तोतुं समुपचक्रमे॥१५८॥

तदनन्तर रघुनन्दन राम पीछे की ओर आधा योजन तक गये तथा वहां स्थित पुण्यजलवाली सरयू नदी का दर्शन किया। लोकपितामह ब्रह्मा भी वहां देवगण तथा ऋषिगण के साथ स्वर्गद्वार तीर्थ तक आये। वे सभी लोग भगवान् काकुस्थ राम के पास पहुंचे। उनके सैकड़ों करोड़ दिव्य विमानों से सभी दिशायें ढकी थी। तब स्वयम्प्रभ महात्मा पुण्यकर्मागण के अत्युत्तम प्रदीप्त तेज से आकाशमण्डल ज्योतिर्मय हो गया। सुगन्धयुक्त पुष्प एवं सुखभरी वायु प्रवाहित हो रही थी। पवित्र पुष्प वायु के कारण आकाश से तेजी से गिरने लगे। उस समय गन्धर्वों तथा अप्सराओं ने वहां सूर्य की उपासना किया। तदनन्तर भगवान् राम ने अपने चरणद्वय से सरयू के जल का स्पर्श किया। उस समय ब्रह्मदेव भी देवगण के साथ भगवान् राम की स्तुति करने लगे।।१५३-१५८।।

त्वं हि लोकपतिर्देव न त्वां जानाति कश्चन। अहं ते वै विशालाक्ष! भूतपूर्वपरिग्रहः॥१५९॥
त्वमचिन्त्यं महद्भूतमक्षयंलोकसंग्रहे। यामिच्छसिमहावीर्यतांतनु प्रविशस्वकाम्॥१६०॥
पितामहस्य वचनादिदमेवाविशत्स्वयम्। सुदिव्यं वैष्णवं तेजः संसारंससहानुजः।
ततो विष्णुतनुं देवाः पूजयन्तः सुरोत्तमम्॥१६१॥
साध्यामरुद्गणाश्चैवसेन्द्राःसाग्निपुरोगमाः। येचदिव्याऋषिगणान्धर्वाप्सरसस्तथा।
सुवर्णा नागयज्ञाश्च दैत्यदानवराक्षसाः॥१६२॥
देवाः प्रहृष्टा मुदिताः सर्वे पूर्णमनोरथाः। साधुसाध्वितितेसर्वेत्रिदिवस्थाबभाषिरे॥१६३॥

ब्रह्मा कहते हैं—"हे देव! आप समस्त लोकों के नाथ हैं। कोई भी आपको जान सकने में समर्थ ही नहीं है। हे विशाललोचन! मुझे भी पूर्वकाल में आप से ही प्राण की प्राप्ति हो सकी है। हे महावीर्य! आपने लोकों के नियमनार्थ अपनी इच्छा के अनुरूप अचिन्त्य अक्षय महा अद्भुद् अपने देह में प्रवेश किया। मैं लोकपितामह ब्रह्मा हूं। आपने मेरी ही प्रार्थना से दिव्य वैष्णव तेज का अवलम्बन लेकर स्वयं अपने अनुज के साथ संसार में प्रवेश किया था। आप सुरश्रेष्ठ हैं। देवता आपकी पूजा आपको विष्णुतनु जानकर ही करते हैं।

साध्यगण, मरुद्गण, अग्नि आदि प्रमुख देवता, दिव्यऋषि, अप्सरा, गन्धर्व, सुपर्ण, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस तथा देवता आपकी पूजा करके प्रमुदित तथा पूर्ण मनोरथ हो जाते हैं तथा देवलोक वासीगण स्वर्ग से आपको साधुवाद देते हैं।।१५९-१६३।।

अथ विष्णुर्महातेजाः पितामहमुवाच ह। एषां लोकं जनौघानां दातुमर्हसि सुव्रत॥१६४॥

इमे तु सर्वेमत्स्नेहादायाताःसर्वमानवाः।
भक्ताश्चभक्तिमन्तश्चात्यक्तात्मानोऽपिसर्वशः॥१६५॥

तच्छ्रुत्वा विष्णुकथितं सर्वलाकेश्वरोऽब्रवीत्।
लोकं सन्तानिकं नाम संस्थास्यन्ति हि मानवाः॥१६६॥

स्वर्गद्वारेऽत्रवैतीर्थेराममेवानुचिन्तयन्। प्राणांस्त्यजतिभक्त्यावैससन्तानम्परंलभेत्॥१६७॥

सर्वे सन्तानिकं नाम ब्रह्मलोकादनन्तरम्।
वानराश्च स्वकां योनिं राक्षसाश्चाऽपि राक्षसीम्॥१६८॥

यस्या विनिःसृता ये वै सुरासुरतनूद्भवाः। आदित्यतनयश्चैव सुग्रीवः सूर्यमण्डलम्॥१६९॥

ऋषयो नागयक्षाश्च प्रयास्यन्ति स्वकारणम्। तथाब्रुवतिदेवेशेगोप्रतारमुपस्थितम्॥१७०॥

तज्जलं सरयूं भेजे परिपूर्णं ततोजलम्।
अवगाह्य जलं सर्वे प्राणांस्त्यक्त्वाप्रहृष्टवत्॥१७१॥

मानुषं देहमुत्सृज्य तेविमानान्यथाऽऽरुहन्। तिर्यग्योनिगतायेच प्रविश्य सरयूंतदा॥१७२॥

देहत्यागञ्चतेतत्रकृत्वादिव्यवपुर्द्धराः। तथान्यान्यपिं सत्त्वानि स्थावराणिचराणिच॥१७३॥

प्राप्य चोत्तमदेहं वै देवलोकमुपागमन्। तस्मिंस्तत्र समापन्ने वानरा ऋक्षराक्षसाः।
तेऽपि प्रविविशुः सर्वे देहान्निक्षिप्य वै तदा॥१७४॥

तदा स्वर्गगताःसर्वेस्मृत्वालोकगुरुंविभुम्। जगामत्रिदशै सार्द्धं रामोहृष्टोमहामतिः॥१७५॥

तदनन्तर महातेजस्वी विष्णु ने पितामह से कहा—"हे सुव्रत! इस जनसमूह के लिये उत्तम लोकों की व्यवस्था करिये। ये मानव स्नेह के कारण मेरे साथ आये हैं। ये सभी भक्त, भक्तिमान् हैं तथा सभी प्रकार से सब कुछ त्याग कर आये हुये हैं।" विष्णु का यह वाक्य सुनकर निखिल लोकों के नाथ ब्रह्मा ने कहा— "मानवगण सन्तानिक लोकों में स्थापित होंगे। जो इस स्वर्गद्वार तीर्थ में भक्तिपूर्वक राम का चिन्तन करते हुये प्राणत्याग करेंगे, उनको अविच्छिन्न लोकों की प्राप्ति होंगी। सभी ब्रह्मलोक के परवर्त्ती सन्तानिक नामक लोक जायेंगे। वानरगण अपनी योनि, राक्षसगण राक्षसी योनि तथा सुर एवं असुरों ने जिस-जिस योनि से जन्म लिया था वे सभी सन्तानिक लोक की प्राप्ति करेंगे। सूर्यपुत्र सुग्रीव सूर्यमण्डल में जायेंगे। ऋषि, नागगण, यक्षगण अपने-अपने कारण शरीर की प्राप्ति करेंगे। देवेश ब्रह्मा यह कहकर क्रमशः गोप्रतार तीर्थ पहुंचे। यह तीर्थ सरयू का ही एक अंश है तथा यह गंभीर जलयुक्त है। राम के अनुगामी उन सबने इस जल में प्रवेश करके प्राण त्याग किया। उन सबने मानव देह त्यागकर विमानों पर आरोहण किया। तिर्यक् योनि वाले प्राणी भी सरयूजल

में प्रवेश कर गये। उन्होंने प्राणत्याग करके दिव्य देह धारण किया। अन्य स्थावर तथा चर प्राणीगण ने भी उत्तम देह लाभ करके सुरलोक गमन किया। वहां यह घटना घटित हो गयी कि वानर, भालू तथा राक्षसों ने भी संघटित होकर राम का चिन्तन करते-करते प्राण त्याग (सरयू जल में) किया तथा स्वर्ग चले गये। तब देवगण के साथ प्रसन्न हृदय श्रीराम ने भी स्वर्ग गमन किया।।१६४-१७५।।

अतस्तद्गोप्रताराख्यं तीर्थंविख्यातिमागतम्। गोप्रतारे परोमोक्षोनान्यतीर्थेषुविद्यते।।१७६।।

जन्मान्तरशतैर्विप्र योगोऽयं यदि लभ्यते।
मुक्तिर्भवतितत्त्वेकजन्मनालभ्यते न वा।।१७७।।

गोप्रतारेण सन्देहोहरिर्भक्त्यासुनिष्ठितः। एकेनजन्मनान्योऽपियोगमोक्षञ्चविन्दति।।१७८।।

गोप्रतारे नरो विद्वान्योऽपि स्नाति सुनिश्चितः।
विशत्यसौ परं स्थानं योगिनामपि दुर्लभम्।।१७९।।

हे विप्र! तब से यह गोप्रतार तीर्थ लोकों में विख्यात हो गया। तीर्थों में इसके समान अन्य कोई तीर्थ नहीं है। इस तीर्थ में परम मोक्ष की प्राप्ति होती है। सैकड़ों जन्मों के पुण्य के फलस्वरूप यदि मानव गोप्रतरयोग (तीर्थगमन) करता है, तब एक ही जन्म में उसकी मुक्ति हो जाती है। हरि यहां स्थित हैं, इसमें सन्देह नहीं है। इस तीर्थ में व्यक्ति एक ही जन्म में मोक्ष लाभ करता है। जो ज्ञानी मनुष्य विश्वास के साथ इस तीर्थ में स्नान करता है, वह योगियों के लिये दुर्लभ परम स्थान को प्राप्त करता है।।१७६-१७९।।

कार्त्तिक्याञ्च विशेषेण स्नातव्यं विजितेन्द्रियैः।
कार्त्तिके मासि विप्रर्षे सर्वे देवाः सवासवाः।
स्नातुमायान्त्ययोध्यायां गोप्रतारे विशेषतः।।१८०।।

गोप्रतारसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति। यत्र प्रयागराजोऽपि स्नातुमयातिकार्त्तिके।।१८१।।

निष्पापःकलुषं त्यक्त्वा शुक्लाङ्गः सितकञ्चुकः।
शुद्ध्यर्थं साधु कमोऽसौ प्रयागे मुनिसत्तम!।।१८२।।
यानि कानि च तीर्थानि भूमौ दिव्यानि सुव्रत!।
कार्त्तिक्यां तानि सर्वाणि गोप्रतारे वसन्ति वै।।१८३।।
गोप्रतारे जपो होमः स्नानं दानञ्च शक्तितः।
सर्वमक्षयतां याति श्रद्धयानियमव्रतम्।।१८४।।
कार्त्तिके प्राप्य तद्यान्ति तीर्थानि सकलान्यपि।
गोप्रतारं गमिष्यामः पापं त्यक्तमितीच्छया।।१८५।।

विशेष रूप से कार्त्तिक मास में पूर्णिमा के दिन जितेन्द्रिय मानव इस गोप्रतार तीर्थ में अवश्य स्नान करे। हे विप्रर्षे! कार्त्तिक मास में इन्द्र के साथ देवगण अयोध्या के गोप्रतार तीर्थ में स्नानार्थ आते हैं। हे मुनिप्रवर! इसके समान न तो कोई तीर्थ है, न होगा! जिस प्रयाग तीर्थ में पुण्यकामना करने वाले व्यक्ति

शुक्लाङ्ग (पवित्र) तथा शुभ्रदेह हो जाते हैं, कार्तिक मास में वे प्रयागराजतीर्थ स्वयं यहां तीर्थस्नान हेतु आगमन करते हैं। हे सुव्रत! इस पृथिवीमण्डल में जितने दिव्यतीर्थों की स्थिति है, कार्तिक पूर्णिमाकाल में वे सभी गोप्रतार में आते हैं। इस गोप्रतार तीर्थ में जप, होम, स्नान, दान आदि को सश्रद्ध भाव से अनुष्ठित करने पर वे सब अक्षय हो जाते हैं। कार्तिक मास में सभी तीर्थ यह कहते हैं कि हम पापों से मुक्त होने के लिये ग्रोप्रतार तीर्थ चलें!।।१८०-१८५।।

गोप्रतारे कृतं स्नानं सर्वपापप्रणाशनम्। गोप्रतारे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा गुप्तहरिंविभुम्।
सर्वपापैः प्रमुच्येत नाऽत्र कार्या विचारणा॥१८६॥
विष्णुमुद्दिश्य विप्राणां पूजनञ्च विशेषतः। कर्त्तव्यं श्रद्धया युक्तैः स्नानपूर्वं यतव्रतैः॥१८७॥
पयस्विनी च गौर्देया सालङ्कारा च शक्तितः।
विप्राय वेदविदुषे नियमव्रतशालिने।
ब्राह्मणायाऽतिशुचये विष्णुप्रीत्यै यतात्मना॥१८८॥
अन्नं बहुविधं हेमवासांसिविविधानिच। दातव्यानि हरेः प्राप्त्यैभक्त्यापरमयायुतैः॥१८९॥
सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे नर्मदायां शशिग्रहे। तुलादानस्य यत्पुण्यं तदत्र दीपदानतः॥१९०॥
घृतेन दीपको यस्य तिलतैलेन वा पुनः।
ज्वलते मुनिशार्दूल! हयमेधेन तस्य किम्॥१९१॥

गोप्रतार तीर्थ में स्नान करने से समस्त कलुष का नाश हो जाता है। मानव यहां स्नान करने के पश्चात् विभु गुप्तहरि के दर्शन द्वारा सर्वपाप विनिर्मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। विशेषतः यहां विष्णु के उद्देश्य से ब्राह्मणों की अर्चना करनी चाहिये। व्रतशील मानवगण यहां स्नान करने के उपरान्त श्रद्धापूर्वक अपनी वित्तशक्ति के अनुरूप नियम पालन करने वाले व्रतशील वेदज्ञ द्विजों को अलंकार युक्त दुग्धवती गौ का दान करें। यतात्मा मनुष्य विष्णु की प्रसन्नता के लिये परमभक्ति के साथ इस तीर्थ में अत्यन्त पवित्र विप्र को अनेक अन्न-वस्त्र दान करें। ऐसा करने पर श्रीहरि प्राप्त हो जाते हैं। सूर्यग्रहण काल में कुरुक्षेत्र में तथा चन्द्रग्रहण काल में नर्मदा में तुलापुरुष दान का जो पुण्य है, इस तीर्थ में दीपदान करने पर वही पुण्यलाभ होता है। हे ऋषिशार्दूल! जो मानव इस गोप्रतारतीर्थ में घृत किंवा तिलतैल युक्त दीप जलाता ही नहीं, वह भले ही अश्वमेध करे, उससे क्या लाभ?।।१८६-१९१।।

तेनेष्टं क्रतुभिः सर्वैः कृतं तीर्थावगाहनम्। दीपदानं कृतं येन कार्त्तिके केशवाग्रतः॥१९२॥
नानाविधानि तीर्थानि भुक्तिमुक्तिप्रदानि च।
गोप्रतारस्य तान्यत्र कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥१९३॥
स्वर्णमल्पञ्च यो दद्याद्ब्राह्मणे वेदपारगे। शुभाङ्गतिमवाप्नोति ह्यग्निवच्चैव दीप्यते॥१९४॥
गोप्रताराभिधे तीर्थे त्रिलोकी विश्रुते द्विज!।
दत्त्वाऽन्नञ्च विधानेन न स भयोऽभिजायते॥१९५॥

तत्र स्नानंतु यः कुर्याद्विप्रान्संतर्पयेन्नरः। सौत्रामणेश्च यज्ञस्य फलम्प्राप्नोतिमानवः॥१९६॥

कार्त्तिक इस तीर्थ में जो मनुष्य स्नानोपरान्त केशव के सामने दीपदान करता है, उसने तो सभी यज्ञों को सम्पन्न कर लिया। भुक्ति-मुक्तिप्रद अन्य नानाविध जितने तीर्थ हैं, वे गोप्रतार तीर्थ १/१६ भाग भी नहीं है। जो मानव इस तीर्थ में अल्पमात्र भी स्वर्ण वेदज्ञ-ब्राह्मण को देता है, उसे उत्तम गति की प्राप्ति होती है। वह अग्निवत् तेजयुक्त हो जाता है। हे द्विज! गोप्रतार नामक तीर्थ त्रैलोक्य विख्यात है। जो मानव विधिविधान पूर्वक यहां अन्नदान करता है, उसे पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता। जो मानव इस गोप्रतार में स्नान तथा द्विजगण को तृप्त करता है, उसे इन्द्रयोग का फल मिलता है।।१९२-१९६।।

एकाहारस्तु यस्तिष्ठेन्मासं तत्र यतव्रतः। यावज्जीवकृतं पापं सहसा तस्य नश्यति॥१९७॥

अग्निप्रवेशं ये कुर्युर्गोप्रतारे विधानतः। तेविशन्ति पदं विष्णोर्निःसन्दग्धं तपोधन॥१९८॥

कुर्वन्त्यनशनं येऽत्र विष्णुत्त्क्या सुनिश्चिताः।
न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि॥१९९॥

अर्चयेद्यस्तु गोविन्दं गोप्रतारे हि मानवः। दशसौवर्णिकं पुण्यं गोप्रतारे प्रकथ्यते॥२००॥

अग्निहोत्रफलो धूपो गोविन्दस्य समर्पितः। भूमिदानेन सदृशं गन्धदानफलं स्मृतम्॥२०१॥

अत्यद्भुतमिदं विद्वन्स्थानमेतत्प्रकीर्तितम्।
कार्त्तिक्यां तु विशेषेण अत्र स्नात्वा शुचिव्रतः॥२०२॥

स्वर्गद्वारेनरःस्नात्वादशस्वर्णफलंलभेत्। स्वर्णदःस्वर्गवासीचयोदद्याच्छ्रद्धयान्वितः॥२०३॥

सुतीर्थे पर्वणि श्रेष्ठे दशस्वर्णफलप्रदे। ज्येष्ठशुक्लचतुर्दश्यां रात्रौ जागरणं चरेत्॥२०४॥

उपोषितः शुचिः स्नातो विष्णुपूजनतत्परः। दीपंदद्यात्प्रयत्नेननानाफलविधायिनम्॥२०५॥

जो यतव्रत मानव एकाहारी रहकर गोप्रतारतीर्थ में एकमास निवास करता है, उसकी जीवनपर्यन्त की संचित पापराशि सहसा विनष्ट हो जाती है। हे तपोधन! जो मानव इस तीर्थ में विधिपूर्वक अग्नि में प्रविष्ट होता है, वह मानो विष्णुपद में प्रविष्ट हो गया। इसमें सन्देह नहीं है। जो मुनिवृत्ति का आश्रय लेकर विष्णु के प्रति भक्ति तत्पर रहते अनशन व्रत करते हैं, शतकोटि कल्पकाल में भी उनका पुनर्जन्म नहीं होता। जो मानव गोप्रतार में गोविन्द का पूजन करते हैं, उनको दस स्वर्णदान जनित पुण्यलाभ होता है। गोविन्द के लिये किये धूपदान से अग्निहोत्र फल होता है। गन्धदान से भूमिदान का फललाभ होता है। हे विद्वान्! यह स्थान अत्यन्त अद्भुत् कहा गया है। विशेष करके कार्त्तिक मास में मानव इस तीर्थ में स्नानोपरान्त दस स्वर्णदान जनित फललाभ करता है। वह यहां स्नान करने से अत्यन्त पवित्र हो जाता है। जो व्यक्ति सश्रद्ध भाव से स्वर्गद्वार में स्वर्णदान करते हैं, उनको स्वर्ण की प्राप्ति होती है। यह अत्युत्तम तीर्थ है। श्रेष्ठ पर्व ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्दशी के दिन यहां दस स्वर्ण दान देना चाहिये। रात्रि में जागरण करके पवित्रतापूर्वक विष्णुपूजा तत्पर हो जाये तथा यत्नत; विविध फल देने वाला दीपदान करें।।१९७-२०५।।

तावद्गर्जन्ति पुण्यानि स्वर्गे मर्त्ये रसातले। यावद्दद्याज्जले दीपं कार्त्तिके केशवाग्रतः॥२०६॥

पौर्णमास्यांप्रभातेतुस्नात्वानिर्मलमानसः। हरिंसम्पूज्यविधिवद्विधायश्राद्धमादरात्॥२०७॥
दत्त्वाऽन्नंचयथाशक्त्यासन्तोष्यब्राह्मणांस्ततः। वस्त्रादिभिरलङ्कारैःसम्पूज्यद्विजदम्पती॥२०८॥

विभुंगुप्तहरिं दृष्ट्वा सम्पूज्य तु विशेषतः।
नमस्कृत्याऽनु तत्तीर्थं शुचिस्तद्गतमानसः॥२०९॥
स्वर्गद्वारे च विधिवन्मध्याह्ने स्नानमाचरेत्।
सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोके महीयते॥२१०॥

कार्त्तिकमास में जब तक जल के ऊपर केशव के समक्ष दीपदान नहीं किया जाता, तभी तक स्वर्ग-मर्त्य-रसातल के पुण्य समूह गर्व से गर्जन करते हैं। दीपदान करते ही उनका घमण्ड चूर हो जाता है; क्योंकि दीपदान का पुण्य उन सबसे कहीं अधिक है। दीपदान के पश्चात् प्रभात होने पर पूर्णिमा के दिन स्नान करके निर्मल मानस होना चाहिये। हरि की पूजा करके यथाविधि आदरपूर्वक श्राद्ध करें। तत्पश्चात् शक्ति के अनुसार अन्नदान करके ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करना चाहिये। वस्त्र-अलंकारादि से उनकी पत्नियों की पूजा करें। तदनन्तर विष्णु गुप्तहरि का दर्शन, विशेष रूप से उनकी पूजा तथा उसे प्रणाम करके पवित्र तथा तद्गत् चित्त होकर मध्याह्न काल में सविधि-स्वर्गद्वार में स्नान करना चाहिये। इससे व्यक्ति सभी पापों से शुद्ध होकर विष्णुलोक गमन करता है।।२०६-२१०।।

इति परमविधानैर्गोप्रतारे विधाय प्रथितसुकृतमूर्त्तिः स्नानमुच्चैः प्रयत्नात्।
कलितनिखिलपापः पूजयित्वाऽऽदरेणाऽच्युतममलविकाशोविष्णुसायुज्यमेति॥२११॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डेऽयोध्यामाहात्म्ये स्वर्गद्वारगोप्रतारतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः।।६।।

जो पुण्यात्मा विख्यात व्यक्ति इन सब उत्तम विधि का अवलम्बन लेकर यत्नतः गोप्रतारतीर्थ में स्नान करके सादर हरिपूजन करता है, उसके समस्त पाप दूर हो जाते हैं। वह अच्युत तथा अमल होकर विष्णु की सायुज्य मुक्ति प्राप्त करता है।।२११।।

।।षष्ठ अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

सप्तमोऽध्यायः

क्षीरोद, घोषार्क कुण्ड माहात्म्य रुक्मिणीकुण्ड धनक्षयतीर्थ वर्णन, रैभ्य-उर्वशी संवाद, सूर्य द्वारा राज्ञेश्वर को वर देना

अगस्त्य उवाच

तीर्थमन्यत्प्रवक्ष्यामि क्षीरोदकमिति स्मृतम्। सीताकुण्डाच्च वायव्ये वर्त्तते गुणसुन्दरम्।
पुण्यैकनिचयस्थानं सर्वदुःखविनाशनम्॥१॥
पुरा दशरथो राजा पुत्रेष्टिं नाम नामतः। चकार विधिवद्यज्ञं पुत्रार्थं यत्र चाऽऽदरात्॥२॥
क्रतुं समापयामास सानन्दो भूरिदक्षिणम्। यज्ञान्ते क्रतुभुक्तत्र मूर्तिमान्समदृश्यत॥३॥
हस्ते कृत्वा हेमपात्रंहविःपूर्णमनुत्तमम्। तस्मिन्हविषिसङ्कीर्णं वैष्णवं तेजउत्तमम्।
चतुर्विधंविभज्यैवपत्नीभ्योदत्तवान्नृपः ॥४॥

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—क्षीरोदक नामक एक अन्य तीर्थ की बात कहता हूं। यह क्षीरोदक सीताकुण्ड के वायव्य कोण पर अवस्थित है। विविध गुणयुक्त होने के कारण यह तीर्थ अतीव मनोरम है। यह क्षीरोदक पुण्यसमूह का प्रधान स्थान है तथा अखिल दुःखनाशक भी है। पूर्वकाल में राजा दशरथ ने आदरपूर्वक पुत्रकामनार्थ यहां पुत्रेष्ठि यज्ञ किया था। आनन्दित मन वाले राजा दशरथ ने जब प्रचुर दक्षिणा वाला पुत्रेष्ठि यज्ञ सम्पन्न किया था, उस समय यज्ञावसानकाल में हुताशन ने मूर्त्तिमान् होकर उनको दर्शन दिया था। अग्नि ने उनको हाथ में स्वर्णपात्र के साथ दर्शन दिया था। यह पात्र उत्तम हविष्य से भरा हुआ था। इसमें उत्तम वैष्णवतेज निहित था। राजा ने उस हवि को चार भागों में विभक्त किया तथा अपनी तीनों पत्नियों को विभाजित करके दे दिया (एक पत्नी को दो भाग तथा दो को एक-एक भाग दिया)।।१-४।।

यत्र तत्क्षीरसम्प्राप्तिर्जाता परमदुर्लभा। क्षीरोदकमितिख्यातंतत्स्थानंपापनाशनम्।
उदकेनाभिव्यक्तं च उत्तमञ्च फलप्रदम्॥५॥
तत्र स्नात्वा नरो धीमान्विजितेन्द्रिय आदरात्।
सर्वान्कामानवाप्नोति पुत्रांश्च सुबहुश्रुतान्॥६॥
आश्विनेशुक्लपक्षस्यएकादश्यांजितव्रतः। तत्रस्नात्वा विधानेनदत्त्वाशक्त्याद्विजन्मने॥७॥
विष्णुं सम्पूज्य विधिवत्सर्वान्कामानवाप्नुयात्।
पुत्रानवाप्नुयाद्विद्धि धर्मांश्च विधिवन्नरः॥८॥
तस्मात्क्षीरोदकस्थानान्नैर्ऋते दिग्दले श्रितम्।
ख्यातं बृहस्पतेः कुण्डमुद्दण्डाचण्डमण्डितम्॥९॥

हे द्विज! यहां परम दुर्लभ उस क्षीर की प्राप्ति होने के कारण यह तीर्थ क्षीरोदक कहलाया। यह जल से घिरा परम उत्तम फल देने वाला स्थान है। जो इन्द्रियजित् विद्वान् मनुष्य इस क्षीरोदक में श्रद्धापूर्वक स्नान करता है, उसकी सभी कामना सफल होती है। उसे ज्ञानी पुत्र की प्राप्ति होती है। जितेन्द्रिय मानव यथाविधान आश्विन शुक्ला एकादशी के दिन यहां स्नानोपरान्त यथाशक्ति ब्राह्मणगण को दान करके सविधि विष्णुपूजन प्रभृति विविध धर्मानुष्ठान द्वारा समस्त कामना पूर्ण करता है। उसे अनेक पुत्र भी प्राप्त होते हैं। इस क्षीरोदक तीर्थ के नैर्ऋत कोण की ओर विख्यात बृहस्पति-कुण्ड विद्यमान है। यह कुण्ड उदण्ड-चण्ड द्वारा युक्त है।।५-९।।

सर्वपापप्रशमनं पुण्यामृततरङ्गितम्। यत्र साक्षात्सुरगुरुर्निवासं किल निर्ममे।।१०।।
यज्ञञ्च विधिवच्चक्रे बृहस्पंतिरुदारधीः। नानामुनिगणैर्युक्तं रम्यं बहुफलप्रदम्।
सुपर्णच्छायसम्पन्नं कुण्डं तत्पापिदुर्ल्लभम्।।११।।
इन्द्रादयोऽपि विबुधा यत्र स्नात्त्वा प्रयत्नतः।
मनोऽभीष्टफलं प्राप्ताः सौन्दर्यौदार्यतुन्दिलाः।।१२।।
यत्र स्नानेन दानेन नरो मुच्येत किल्बिषात्।।१३।।
भाद्रे शुक्ले तु पञ्चम्यां यात्रा तत्र फलप्रदा। अन्यदाऽपिगुरोर्वारिस्नानं बहुफलप्रदम्।।१४।।
बृहस्पतेस्तथा विष्णोः पूजां तत्र च आचरेत्। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके स मोदते।।१५।।
भवेद्बृहस्पतेः पीडा यस्यगोचरवेधतः। तेनाऽत्रविधिवत्स्नानंकार्यं सङ्कल्पपूर्वकम्।।१६।।

यह कुण्ड सर्वपापनाशक तथा पवित्र अमृत से तरंगायित है। साक्षात् सुरगुरु बृहस्पति यहां रहते हैं। उदारमति बृहस्पति ने यहां यथाविधि यज्ञ किया था। यह रम्य कुण्ड नाना मुनिगण द्वारा समाकीर्ण, अनेक फलप्रद तथा उत्तम पादप द्वारा छायायुक्त है। पापीगण के लिये इस कुण्ड का दर्शन दुर्लभ है। इन्द्रादि देवगण भी यत्नतः इस कुण्ड में स्नान करके अभीष्ट फल प्राप्त करके सौन्दर्य तथा औदार्यगुण से स्फीत हो जाता है। इस तीर्थ में स्नान तथा दान करने वाला मनुष्य पापरहित हो जाता है। भाद्रमासीय शुक्ला अष्टमी के दिन बृहस्पतिकुण्ड अत्यधिक फलप्रद होता है। व्यक्ति इस कुण्ड में बृहस्पति तथा विष्णु की पूजा करके सर्वपापविनिर्मुक्त होते हैं। वे विष्णुलोक गमन करने से अतीव हर्षित भी होते हैं। गोचर में जिसे बृहस्पति पीड़ाप्रद होते हैं, वे इस कुण्ड में सविधि स्नान करें।।१०-१६।।

होमंकृत्वा गुरोर्मूर्तिःसुवर्णेनविनिर्मिता। स्थित्वाजले प्रदेयावै पीताम्बरसमन्विता।।१७।।
वेदज्ञायाऽतिशुचये स्नात्वा पीडापनुत्तये। होमञ्च कारयेत्तत्र ग्रहजाप्यविधानतः।।१८।।
एवं कृते न सन्देहो ग्रहपीडा प्रणश्यति।।१९।।
तद्दक्षिणे मुनिश्रेष्ठरुक्मिणीकुण्डमुत्तमम्। चकारयत्स्वयंदेवीरुक्मिणीकृष्णवल्लभा।।२०।।
तत्र विष्णुः स्वयं चक्रे निवासंसलिलेतदा। वरप्रदानात्स्नेहेनभार्यायाःप्रगुणीकृतम्।।२१।।

बृहस्पतिग्रह द्वारा पीड़ित व्यक्ति पीड़ा निवारणार्थ होम करके स्वर्ण की बृहस्पति मूर्त्ति बनवायें। यह मूर्त्ति पीताम्बर से लपेटी जाये। इसे जल में खड़े होकर वेदज्ञ पवित्र ब्राह्मण को प्रदान करे। तदनन्तर ग्रह जप विधि से होम कराये। इस प्रयोग से बृहस्पति ग्रहजनित पीड़ा निवृत्त हो जाती है। हे मुनिप्रवर! बृहस्पति कुण्ड

के दक्षिण में रुक्मिणी कुण्ड स्थित है। यह उत्तम कुण्ड कृष्णवल्लभा देवी रुक्मिणी द्वारा निर्मित है। इस कुण्ड के जल में स्वयं विष्णु का ही निवास है। उन विष्णु ने प्रेम के कारण रुक्मिणी को वर देकर इस स्थान का गौरव बढ़ाया।।१७-२१।।

तत्र स्नानं तथा दानं होमं वैष्णवमन्त्रकम्। द्विजपूजां विष्णुपूजांकुर्वीतप्रयतोनरः।।२२।।
तत्र साम्वत्सरी यात्रा कर्त्तव्या सुप्रयत्नतः। ऊर्ज्जकृष्णनवम्याञ्च सर्वपापापनुत्तये।।२३।।
पुत्रवाञ्जायते वन्ध्यो यात्रां कृत्वा न संशयः।
नारीभिर्वा नरैर्वापि कर्त्तव्यं स्नानमादरात्।।२४।।
भुक्त्वा भोगान्समग्रांश्च विष्णुलोके स मोदते।
लक्ष्मीकामनयातत्र स्नातव्यञ्च विशेषतः।।२५।।
सर्वकाममवाप्नोतितत्रस्नानेनमानवः। रुक्मिणीश्रीपतिप्रीत्यैदातव्यञ्चस्वशक्तितः।।२६।।
कर्त्तव्या विधिवत्पूजा ब्राह्मणानां विशेषतः। ध्येयोलक्ष्मीपतिस्तत्रशङ्खचक्रगदाधरः।।२७।।
पीताम्बरधरः स्त्रग्वी नारदादिभिरीडितः। ताक्ष्यासनोमुकुटवान्महेन्द्रादिविभूषितः।।२८।।
सर्वकामफलावाप्त्यै वक्षोलक्षितकौतुभः। अतसीकुसुमश्यामः कमलामललोचनः।।२९।।

नित्य इस कुण्ड में स्नान, दान, वैष्णवमन्त्र से होम, द्विजपूजा, विष्णुपूजा करे। पापनाश की कामना से कार्त्तिक कृष्णा नवमी तिथि के दिन यत्न के साथ इस कुण्ड की संवत्सरी यात्रा करनी चाहिये। इससे मानव तथा वन्ध्या भी पुत्रवान होते हैं। इसमें संशय नहीं है। पुरुष हो, किंवा स्त्री ही क्यों न हो, सभी सादर इस कुण्ड में स्नान करें। ऐसा करने वाले समस्त भोगों का उपभोग करने के पश्चात् विष्णुलोक प्राप्त करते हैं। लक्ष्मीलाभार्थ इस कुण्ड में स्नान करें। जो मानव यहां स्नान करता है, उसकी सभी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। यहां रुक्मिणी तथा श्रीपति विष्णु की प्रसन्नतार्थ शक्ति के अनुसार दान तथा यथाविधि ब्राह्मण पूजा करना कर्त्तव्य है। यहां इस प्रकार की विधि के अनुसार विष्णु ध्यान करें। यथा—रमापति विष्णु शंख-चक्र-गदाधारी, पीताम्बर तथा माला से युक्त हैं। नारद आदि महर्षिगण उनकी स्तुति कर रहे हैं। वे गरुड़ासीन हैं। उनके मस्तक पर मुकुट शोभित है। उनका वक्ष कौस्तुभयुक्त है। कौस्तुभ से समस्त कामना प्राप्ति का संकेत मिल रहा है। उनका वर्ण अलसी के पुष्प जैसा श्याम तथा लोचन कलम की तरह निर्मल है।।२२-२९।।

एवं कृते न सन्देहः सर्वान्कामानवाप्नुयात्।
इह लोके सुखम्भुक्त्वा हरिलोके स मोदते।।३०।।
अतः परम्प्रवक्ष्यामि तीर्थमन्यदघापहम्। कलिकिल्विषसंहारकारकं प्रत्ययात्मकम्।।३१।।

साधक इस प्रकार से ध्यान करके सर्वकामयुक्त हो जाता है। वह इस लोक में सुख भोग के पश्चात् विष्णुलोक में परम हर्षित होता है। इसमें संशय नहीं है। अब पापनाशक एक अन्य तीर्थ का वर्णन करता हूं। यह परम पवित्र, सर्वकामसिद्धप्रद, कलिकल्मष का नाशक तथा प्रत्ययात्मक है।।३०-३१।।

परम्पवित्रमतुलं सर्वकामार्थसिद्धिदम्। धनयक्षइतिख्यातं परं प्रत्ययकारकम्।।३२।।
रुक्मिणीकुण्डवायव्यदिग्दले संस्मृतं शुभम्। हरिश्चन्द्रस्य राजर्षेरासीत्तत्र धनं महत्।।३३।।

तस्य रक्षार्थमत्यर्थं रक्षितो यक्षउच्चकैः। विश्वामित्रो मुनिः पूर्वं यदाचैव पराजयत्॥३४॥
हरिश्चन्द्रं नरपतिं राजसूयकरम्परम्। राज्यं जग्राह सकलं चतुरङ्गबलान्वितम्॥३५॥
तद्वशेऽदाच्च स मुनिर्धनं सकलमुत्तमम्। तद्रक्षायै प्रयत्नेन यक्षं स्थापितवानसौ॥३६॥
प्रमन्थुरइतिख्यातं प्रमोदानन्दमन्दिरम्। रक्षां विदधतस्तस्य बहुयत्नेन सर्वशः॥३७॥
तुतोष स मुनिर्धीमान्कन्दाचिद्विजितेन्द्रियः। उवाचमधुरं वाक्यंप्रीत्यापरमयायुतः॥३८॥

इस परम प्रत्ययकारक (श्रद्धाकारक, विश्वास उत्पन्न करने वाला) विख्यात तीर्थ का नाम है धनयक्ष तीर्थ। यह शुभावह तीर्थ रुक्मिणी कुण्ड के वायव्यकोण पर अवस्थित है। राजर्षि हरिश्चन्द्र की विपुल धन-सम्पदा यहीं रक्षित थी। रक्षार्थ एक यक्ष सदा के लिये नियुक्त था। जब पूर्वकाल में ऋषि विश्वामित्र ने राजसूय यज्ञ करने वाले राजाओं में श्रेष्ठ हरिश्चन्द्र को पराजित करके राजा की चतुरंगिणी सेना के साथ उनका समस्त राज्य ग्रहण कर लिया, तब मुनि ने इस अतुल उत्तम धनसम्पदा के रक्षार्थ इस यक्ष को नियुक्त किया था। यह यक्ष तब से उस धन-सम्पदा की रक्षा करता आ रहा है। यहां पर प्रमन्थुर नामक विख्यात मन्दिर भी है। यह मन्दिर निरन्तर प्रमोद तथा आनन्द से भरपूर रहता है। वह यक्ष इसी मन्दिर में ऋषि विश्वामित्र की सभी सम्पत्ति की रक्षा करता रहता है। एक बार इस मन्दिर में धीमान् महर्षि विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर यक्ष से प्रेमपूर्वक मधुरता से यह कहा।।३२-३८।।

विश्वामित्र उवाच

वरं वरय धर्मज्ञ! क्षिप्रमेवविमत्सरः। भक्त्या परमया धीर! सन्तुष्टोऽस्मिविशेषतः॥३९॥

ऋषि विश्वामित्र कहते हैं—हे धर्मज्ञ! तुम मत्सरता से रहित होकर वर मांगों। हे धीर! तुम्हारी परमभक्ति देखकर मैं तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हो गया हूं।।३९।।

यक्ष उवाच

वरं प्रयच्छसि यदि विप्रवर्य! मदीप्सितम्। ममाङ्गमतिदुर्गन्धि शापाच्च नृपतेरभूत्।
सुगन्धयितुं ब्रह्मर्षे! तत्प्रसीदमुनीश्वर!॥४०॥

यक्ष कहता है—हे वीरवर! राजा के शाप के कारण मेरी देह दुर्गन्धित हो गई है। हे महर्षि! यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं, तब हे मुनीश्वर! मुझ पर प्रसन्न होकर मुझे सुगन्धित करिये।।४०।।

अगस्त्य उवाच

एवमुक्ते तु यक्षेण मुनिर्ध्यानस्थलोचनः। तंविविच्यानयाभक्त्याअभिषेकंचकारसः॥४१।
तीर्थोदकेन विधिवत्कृत्वासङ्कल्पमादरात्। ततः सोऽभूत्क्षणेनैवसुगन्धोत्तरविग्रहः॥४२।
तथाभूतः स मधुरं प्रोवाचप्राञ्जलिस्ततः। पुनः पुरः स्थितोधीमान्विनयावनतस्तदा॥४३॥

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—यक्ष का वचन सुनकर तब मुनि ने ध्यानस्तिमित नेत्रों से यक्ष की भक्ति का स्मरण किया तथा तीर्थजल से संकल्प करते हुये आदर के साथ यक्ष का तीर्थजल से अभिषेक किया। ऋषि के अभिषेक के कारण यक्ष के शरीर का ऊपरी अर्द्धभाग सुगन्धित हो उठा। विनयावनत धीमान् यक्ष ने इस प्रकार सौरभ विभूति से सम्पन्न होकर अंजलिबद्ध होकर पुनः-पुनः मुनि से मधुर वचन कहा।।४१-४३।।

यक्ष उवाच

त्वत्कृपाभिरहंधीर जातः सुरभिविग्रहः। एतत्स्थानं यथाख्यातिंयातिसर्वज्ञतत्कुरु॥४४॥
त्वत्प्रसादेन विप्रर्षे! तथा यत्नं विधेहि वै॥४५॥

यक्ष कहता है—हे वीर! आपकी कृपा से मेरा शरीर सुगन्धित हो गया। हे विप्रर्षि! आपकी कृपा से यह स्थान प्रसिद्ध हो जाये, आप ऐसा करिये।।४४-४५।।

अगस्त्य उवाच

एवमुक्तः क्षणं ध्यात्वा मुनिस्तिमितलोचनः।
यक्षं प्रति प्रसन्नात्मा ह्यवाच श्लक्ष्णया गिरा॥४६॥

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—स्तिमित नेत्र ऋषि विश्वामित्र ने यक्ष की प्रार्थना सुनकर क्षणकाल ध्यान किया। तत्पश्चात् वे यक्ष पर प्रसन्न होकर कोमल वाक्य द्वारा उससे कहने लगे।।४६।।

विश्वामित्र उवाच

प्रसिद्धिमतुलां यक्ष एतत्स्थानं गमिष्यति। धनयक्ष इतिख्यातिमेतत्तीर्थंगमिष्यति॥४७॥
सौन्दर्य्यदं शरीरस्यपरंप्रत्ययकारकम्। यत्रस्नात्वाविधानेनदौर्गन्ध्यंत्यजतिंक्षणात्।
तत्र स्नानं प्रयत्नेन कर्त्तव्यं पुण्यकाङ्क्षिभिः॥४८॥
दानंश्रद्धास्वशक्तिभ्यांलक्ष्मीपूजाविशेषतः। तत्रस्नानेनदानेन लक्ष्मीप्रीत्यैविशेषतः॥४९॥
पूजया तु निधीनाञ्च नवानामपि सुव्रत!। इहलोके सुखं भुक्त्वा परलोके स मोदते॥५०॥
महापद्मस्तथा पद्मः शङ्खो मकरकच्छपौ। मुकुन्दकुन्दनीलाश्च सर्वाश्च निधयो नव॥५१॥
एतेषामपि कुण्डेऽत्र सन्निधिर्भविताऽनघ!। एतेषां तु विशेषेण पूजाबहुफलप्रदा॥५२॥

विश्वामित्र कहते हैं—हे यक्ष! यह स्थान अतुल प्रसिद्धि प्राप्त करेगा। तुम्हारे नाम के अनुसार यह धनयक्ष तीर्थ कहा जायेगा। यह परमतीर्थ शरीर सौन्दर्यप्रद होगा। यहां यत्नतः स्नान करने पर देह की दुर्गन्ध तत्काल नष्ट हो जायेगी। पुण्यकामी व्यक्ति यहां यत्नपूर्वक स्नान करें। यहां श्रद्धापूर्वक यथाशक्ति दान देना चाहिये। यहां लक्ष्मी पूजन करना आवश्यक है। हे सुव्रत! लक्ष्मी की प्रसन्नता के लिये इस तीर्थ में स्नान-दान तथा लक्ष्मी एवं नौ निधियों की पूजा करने से इहलोक में विविध सुखभोग करके परलोक की प्राप्ति होती है। महापद्म, पद्म, शङ्ख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, लीला तथा खर्व ये नौ निधियां हैं। हे निष्पाप! इन निधियों के साथ कुण्ड में लक्ष्मी देवी सदा सन्निहित रहती हैं। विशेषतः इन सबकी पूजा अतीव फलप्रद है।।४७-५२।।

जलमध्ये प्रकर्त्तव्यं निधिलक्ष्मीप्रपूजनम्॥५३॥
अन्नं बहुविधं देयं वासांसि विविधानि च॥५४॥
सुवर्णादि यथा शक्त्या वित्तशाठ्यं विवर्जयेत्। गुप्तंदानं प्रयत्नेनकर्त्तव्यंसुप्रयत्नतः॥५५॥
फलानि च सुवर्णानि देयानि च विशेषतः॥५६॥

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां स्नानं बहुफलप्रदम्। श्रद्धयापरयायुक्तैः कर्त्तव्यंश्रद्धयाऽधिकम्।।५७।।

माघे कृष्णचतुर्दश्यां यात्रा साम्वत्सरी भवेत्।
तत्र स्नानं पितृणान्तु तर्पणञ्च विशेषतः।।५८।।

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत्तृप्यत्विति ब्रुवन्। अपसव्येन विधिवत्तर्प्ययेदञ्जलित्रयम्।।५९।।
एवंकुर्वन्नरोयक्ष! न मुह्यतिकदाचन। अत्र स्नातो दिवं याति अत्रस्नातःसुखीभवेत्।।६०।।
अत्र स्नातेन ते यक्ष कर्त्तव्यं पूजनम्पुरः। त्वत्पूजनेन विधिवन्नृणां पापक्षयोभवेत्।।६१।।
नमः प्रमथराजेति पूजामन्त्र उदाहृतः। तीर्थमध्ये प्रकर्त्तव्यं पूजनं श्रवणादिकम्।।६२।।

जल में लक्ष्मीपति की पूजा अवश्य करें। इसमें कंजूसी रहित होकर इस कुण्ड के निकट नाना अन्न, विविधवस्त्र तथा यथाशक्ति स्वर्णदान करना चाहिये। यहां प्रयत्नपूर्वक गुप्तदान करें। विशेषतः फल एवं स्वर्णदान करें। कृष्णपक्षीय चतुर्दशी के दिन यहां स्नान अनेक फल देने वाला है। परम श्रद्धापूर्वक यहां स्नान तथा दान करना कर्त्तव्य है। माघीकृष्णाचतुर्दशी को इस निधि तीर्थ की सांवत्सरी यात्रा करें। इन सभी वर्णित तीर्थों में स्नान के साथ विशेषरूप से पितृतर्पण करना चाहिये। यह मन्त्र कहकर कि "ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त समस्त जगत् तृप्त हो" तीन अंजलि जल (जनेऊ को अपसव्य करके) से यथाविधि तर्पण करना चाहिये। हे यक्ष! यह करने वाला मानव कभी मोहग्रस्त नहीं होता। हे यक्ष! यहां स्नान करने वाला स्वर्गगमन करता हैं। इस तीर्थ में स्नान से मनुष्य सुखी हो जाता है। यहां जो स्नान करते हैं, वे पहले तुम्हारी पूजा अवश्य करें। इससे उनका पापक्षयीभूत होगा। तुम्हारा पूजामन्त्र होगा "नमः प्रमथराजाय"। इस तीर्थ में तुम्हारी पूजा तथा तुम्हारा नाम श्रवण आवश्यक है।।५३-६२।।

निधिलक्ष्म्योस्तथायक्ष! तवपूजा विशेषतः। एवंयःकुरुतेधीरसर्वान्कामानवाप्नुयात्।।६३।।

धनार्थी धनमाप्नोति पुत्रार्थी पुत्रमाप्नुयात्।
मोक्षार्थी मोक्षमाप्नोति तत्किं न यदिहाऽऽप्यते।।६४।।

यस्तु मोहान्नरोयक्ष स्नानं नकुरुतेकिल। तस्यसाम्वत्सरंपुण्यंत्वंग्रहीष्यसिसर्वशः।।६५।।

इस तीर्थ में निधि, लक्ष्मी तथा तुम्हारी पूजा विशेष कर्त्तव्य है। जो धीर व्यक्ति इस विधि-विधान से पूजा करते हैं, उनको समस्त कामनाओं की प्राप्ति होती है। धनार्थी धन, पुत्रार्थी पुत्र, मोक्षार्थी मोक्षलाभ करने में समर्थ हो जाता है। अधिक क्या कहा जाये! जगत्\में ऐसी कोई वस्तु ही नहीं है, जिसे इस तीर्थ सेवन द्वारा मनुष्य न पा सके! हे यक्ष! जो मानव मोह के कारण इस निधितीर्थ आकर भी यहां स्नान नहीं करता, तुम उसके वर्ष पर्यन्त का सुकृत ले लोगे। इसमें सन्देह नहीं है।।६३-६५।।

इति दत्त्वा वरांस्तस्मै विश्वामित्रोमुनीश्वरः। अन्तर्दधेमुनिवरस्तदासचतपोनिधः।।६६।।
तदाप्रभृतितत्स्थानंपरमांख्यातिमाययौ। तस्यतीर्थस्यसकलाभूमिःस्वर्णविनिर्मिता।।६७।।
दिव्यरत्नौघखचिता समन्तादुपशोभिता। एवं यः कुरुते विद्वन्सयातिपरमांगतिम्।।६८।।
धनयक्षादुत्तरस्मिन्दिग्भागेसंस्थितं द्विज!। वसिष्ठकुण्डंविख्यातंसर्वपापापहं सदा।।६९।।
वसिष्ठस्य सदा तत्र निवासः सुतपोनिधेः। अरुन्धती सदा यस्य वर्तते निर्मलव्रता।।७०।।

अत्र स्नानंविशेषेणश्राद्धपूर्वमतन्द्रितः। यः कुर्यात्प्रयतोधीमांस्तस्यपुण्यमनुत्तमम्।।७१।।
वामदेवस्य यत्रैव सन्निधिर्वर्ततेऽनघ!। वसिष्ठवामदेवौतु पूजनीयौ प्रयत्नतः।।७२।।
पतिव्रतापूजनीयाऽरुन्धतीचविशेषतः। स्नातव्यंविधिनासम्यग्दातव्यञ्चस्वशक्तितः।।७३।।
सर्वकामफलप्राप्तिर्जायते नात्र संशयः। अत्र यः कुरुते स्नानं स वसिष्ठसमो भवेत्।।७४।।

तदनन्तर मुनिप्रवर मुनीश्वर तपोनिधि विश्वामित्र यक्ष को इस प्रकार अनेक दान देकर वहां से अन्तर्हित् हो गये। हे द्विज! तब से यह स्थान परम प्रसिद्ध हो गया। इस तीर्थ की भूमि स्वर्ण से निर्मित है। दिव्यरत्न जड़ित है तथा सभी ओर से सम्यक्रूपेण सुशोभित है। हे विद्वान्! जो मानव पूर्वोक्त विधि से इस तीर्थ की सेवा करता है; उसे परमगति का लाभ हो जाता है। हे द्विज! धनयक्ष के उत्तरदिक्भाग में वसिष्ठ कुण्ड विराजमान है। यह कुण्ड विख्यात है तथा सर्वपापहारी है। उत्तम तपोनिधि ऋषि वसिष्ठ सतत् इस कुण्ड में निवास करते हैं। निर्मल व्रतवाली अरुन्धती भी यहां स्वामी के सन्निधान में रहती हैं। जो धीमान् आलस्यरहित व्यक्ति श्राद्ध करके इस तीर्थ में स्नान करता है उसका पुण्य अत्युत्तम है। हे निष्पाप! वामदेव भी इस तीर्थ में सदा निवास करते हैं। अतः यत्नतः इस तीर्थ में वसिष्ठ एवं वामदेव की पूजा करें। इस तीर्थ में सविधि स्नान एवं यथाशक्ति दान करना चाहिये। यह करने से समस्त कामना पूर्ण होती है। इसमें संशय नहीं है। जो मानव यहां स्नान करता है, वह वसिष्ठ के समान हो जाता है।।६६-७४।।

भाद्रेमासिसितेपक्षेपञ्चम्यांनियतव्रतः। तस्यसाम्वत्सरीयात्राकर्त्तव्याविधिपूर्विका।।७५।।
विष्णुपूजा प्रयत्नेन कर्तव्या श्रद्धयाऽत्र वै। सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोके महीयते।।७६।।

वसिष्ठकुण्डाद् विप्रेन्द्र! प्रत्यदिग्दलमाश्रितम्।
विख्यातं सागरंकुण्डं सर्वकामार्थसिद्धिदम्।
यत्र स्नानेन दानेन सर्वकामानवाप्नुयात्।।७७।।
पौर्णमास्यां समुद्रस्य स्नानाद्यत्पुण्यमाप्नुयात्।
तत्पुण्यं पर्वणि स्नातो नरश्चाऽक्षयमाप्नुयात्।।७८।।

तस्मादत्रविधानेनस्नातव्यंपुत्रकाङ्क्षया। आश्विनेपौर्णमास्यांतुविशेषात्स्नानमाचरेत्।।७९।।

व्रत तत्पर मनुष्य भाद्रमास की शुक्लापञ्चमी के दिन वसिष्ठ कुण्ड में यथाविधि सांवत्सरी यात्रा करें। जो मानव श्रद्धा के साथ तथा यत्नतः इस तीर्थ में विष्णुपूजा करता है, वह सर्वपाप रहित होकर विष्णुलोक में पूजित होता है। हे विप्रेन्द्र! वसिष्ठ कुण्ड के पश्चिम में विख्यात सागर कुण्ड है। यह सर्वकर्मार्थ सिद्धिप्रद है। यहां स्नान-दान करने से समस्त कामनाओं की प्राप्ति होती है। पर्वस्नान में भी मनुष्य अक्षय पुण्यलाभ करता है। अतएव पुत्र कामना से इस सागर कुण्ड में यथाविधि स्नान करना चाहिये। विशेषतः आश्विन पौर्णमासी के दिन इस तीर्थ में स्नान करें।।७५-७९।।

एवं कुर्वन्नरोविद्वान्सर्वपापैः प्रमुच्यते। अत्रस्नात्वा नरोदत्त्वा यथाशक्त्यादिवम्व्रजेत्।।८०।।

सागरान्नैर्ऋतेभागे योगिनीकुऽण्ढमुत्तमम्।
यत्राऽऽसते चतुःषष्टियोगिन्यो जलसंस्थिताः।।८१।।

सर्वार्थसिद्धिदाः पुंसांस्त्रीणाञ्चैवविशेषतः। परसिद्धिप्रदाःसर्वाः सर्वकामफलप्रदाः॥८२॥
आश्विने शुक्लपक्षस्य अष्टम्याञ्च विशेषतः।
स्नातव्यञ्च प्रयत्नेन योगिनीप्रीतयेनृभिः॥८३॥
अत्रस्नानंतथादानंसर्वंसफलताम्व्रजेत्। यक्षिणीप्रभृतयः सिद्धा भवन्त्यत्र नसंशयः॥८४॥
योगिनीकुण्डतः पूर्वमुर्वशीकुण्डमुत्तमम्। यत्र स्नातोनरोविद्वन्नुर्वशींदिविसंश्रयेत्॥८५॥
पुराकिल मुनिर्धीरो रैभ्योनामतपोधनः। चचारहिमवत्पार्श्वे निराहारोजितेन्द्रियः॥८६॥

विद्वान् मानव यह करके समस्त कलुष से मुक्त हो जाता है तथा यथाशक्ति स्नान-दान के प्रभाव से स्वर्ग गमन करता है। सागरकुण्ड के नैर्ऋत् कोण में उत्तम योगिनी कुण्ड है। इस योगिनी कुण्ड के जल में चौसठ योगिनी विद्यमान हैं। योगिनीगण मनुष्यों को तथा विशेषतः स्त्रियों को सर्वार्थसिद्धि प्रदान करती हैं। ये परमसिद्धिप्रद तथा सर्वकामफलप्रदा हैं। इन सब योगिनीगण की प्रसन्नता हेतु मानवगण आश्विन शुक्लाष्टमी के दिन योगिनी तीर्थ में अवश्य स्नान करें। हे विद्वान्! योगिनीकुण्ड में स्नान करके मानव स्वर्गस्थ उर्वशी को प्राप्त कर लेता है। पूर्वकाल में तपोधन जितेन्द्रिय धीमान् मुनि रैभ्य ने अनाहार (उपवासी) रहकर हिमालय के पार्श्व में तप किया था।।८०-८६।।

तत्तपो विपुलं दृष्ट्वा भीतः सुरपतिस्ततः। उर्वशीं प्रेषयामास तपोविघ्नाय चादरात्॥८७॥
ततः सा प्रेषिता तेनाजगाम गजगामिनी। उवास हिमवत्पार्श्वे रैभ्याश्रममनुत्तमम्॥८८॥
नवफुल्ललताकुञ्जे मञ्जुकूजद्विहङ्गमे। किन्नरीकेलिसङ्गीतस्तिमिताङ्गकुरङ्गके॥८९॥
पुन्नागकेशराशोकच्छिन्नकिञ्जल्कपिञ्जरे। कल्पिते काञ्चनगिरौ द्वितीय इव वेधसा॥९०॥
सा बभौ कान्तिसर्वस्वकोशःकुसुमधन्वनः। उर्वश्यनल्पसामान्यलावण्यामृतवाहिनी॥९१॥
अङ्गप्रभासुवर्णेन सितमौक्तिकशोभिता। तारुण्यरुचिरत्वेन तारुण्येन विभूषिता॥९२॥
विलोललोचनापाङ्गतरङ्गधवलत्विषा। नवपल्लवसच्छायं कल्पयन्ती निजाधरम्॥९३॥
कर्णोपलम्बिसङ्घुष्यद्भृङ्गाढ्यचूतमञ्जरी। सुधागर्भसमुद्भूता पारिजातलता यथा॥९४॥
तनुमध्या पृथुश्रोणिर्वर्णोद्भिन्नपयोधरा। निःशाणितशरस्येव शक्तिः कुसुमधन्वनः॥९५॥

महर्षि रैभ्य की विपुल तपस्या देखकर सुरराज इन्द्र ने भयभीत होकर उनके तप के नाशार्थ वहां उर्वशी को आदरपूर्वक भेजा। गजगामिनी उर्वशी देवराज द्वारा प्रेरित होकर वहां आकर हिमवान् के पार्श्व में अत्युत्तम रैभ्याश्रम में निवास करने लगीं। पक्षीगण उस कुञ्ज में मञ्जुल कूजन करते थे। वहां किन्नरीगण का केलि संगीत कुरंगकुल के अंगों में स्तिमित हो रहा था। पुन्नाग, केशर तथा अशोक पुष्पों का किंजल्क छिन्न होकर उस लताकुंज में चित्रित हो रहा था। उसे देखकर प्रतीत होता था कि कांचन शैल का यह लता कुंज विधाता का और एक मनोरम निर्माण था। सामान्य जन के लिये अलभ्य लावण्यामृतवाहिनी उर्वशी स्वर्ण के समान अपने शरीर की शोभा द्वारा श्वेत मौक्तिकभूषण से भूषित होकर ऐसी मनोरम कान्ति धारण कर रही थी, जिसे देखकर यह अनुमान हो रहा था कि मानो (पुष्प) कुसुम के बाणों से शोभासम्पत्ति समूह यहां एकत्र होकर पुंजीभूत हो रही है। उर्वशी यौवनोचित तारुण्य मनोहर गुणों से विभूषिता थी। उसकी निम्न दिक्गामिनी ईषत् वक्र दृष्टि स्वभाव से आरक्त

अधरोष्ठ पर पतित हो रही थी। विमल नेत्र की धवल कान्ति से अधरोष्ठ नवपल्लव की ईषत् ताम्र आभा धारण कर रहे थे। उसके कानों में आम्रमंजरी विराजमान थी। उस मंजरी के मधुपान लोभ के कारण मधुकरगण उस पर मड़राते गुनगुना रहे थे। उसके मनोहर कान आम्रमंजरी से भी सुकोमल थे। मानो उसके कानों पर लगी आम्रमंजरी सुधागर्भमय पारिजात ऐसी शोभित हो रही थी। उर्वशी का मध्यदेश क्षीण था, नितम्ब स्थूल थे। स्तनद्वय प्रशस्तपीवरवत् थे। उसे देखकर लग रहा था मानो ये कामदेव के तीक्ष्ण बाण हों।।८७-९५।।

अपश्यदाश्रमे तस्मिन्मुनिरायतलोचनाम्। नयनानलदाहेन विदग्धेन मनो भुवा।।९६।।
त्रिनेत्रवञ्चनायेव कल्पितां ललनातनुम्। तामाश्रमलतापुष्पकाञ्चीरचितकुण्डलाम्।।९७।।
विलोक्य तां विशालाक्षीं मुनिर्व्याकुलितेन्द्रियः।
बभूव रोषसन्तप्तः शशाप च बहु ज्वलन्।।९८।।

ऋषि रैभ्य ने अपने आश्रम के पास आयतलोचना उर्वशी को देखा। रैभ्य ने विचार किया—"अहो! मनोभव काम की यह क्या अूपर्व विज्ञता है। इन्होंने मदनदहनकारी की (शिव की) नेत्राग्नि से दग्ध होकर भी त्रिलोचन से वञ्चना करके ललनागण के देह की कल्पना की है।" रैभ्य ने यह भी देखा कि उर्वशी उनके ही आश्रम में लगे लता-पुष्प द्वारा काञ्ची तथा कर्णकुण्डल बना रही है। उस विशालाक्षी को देखकर रैभ्य की इन्द्रियां व्याकुल हो गयीं। उन्होंने अग्नि के समान क्रोधित होकर उर्वशी को अभिशप्त किया।।९६-९८।।

रैभ्य उवाच

कुरूपतां व्रजक्षिप्रं या त्वं सौन्दर्यगर्विता। समागता तपोविघ्नहेतवे मम सन्निधौ।।९९।।

रैभ्य कहते हैं—हे ललने! तुम सौन्दर्य से गर्वित होकर मेरा तप नष्ट करने के लिये मेरे आश्रम में आई हो। इसलिये तुम तत्काल कुरूप हो जाओ।।९९।।

अगस्त्य उवाच

इति शप्तारुषा तेन मुनिना सा शुभेक्षणा।
उवाच वनिता भूत्वा प्राञ्जलिर्मुनिमादरात्।।१००।।

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—रोषपरवश ऋषि रैभ्य ने जब शुभदर्शना उर्वशी को इस प्रकार से शापित किया तब उर्वशी अंजलिबद्ध होकर आदरपूर्वक मुनि से कहने लगी।।१००।।

उर्वश्युवाच

भगवन्मे प्रसीद त्वं पराधीनायतस्त्वहम्। त्वच्छापस्य कथं मुक्तिर्भवितानियतव्रत।।१०१।।

उर्वशी कहती है—हे भगवान्! मैं पराधीन नारी हूं। मेरे प्रति प्रसन्न हो जायें। हे व्रतशील! अब मुझे अपने शाप से मुक्त करिये।।१०१।।

रैभ्य उवाच

अयोध्यायामस्ति तीर्थं पावनंपरमं महत्। तत्रस्नानंकुरुष्वाऽद्यसौन्दर्यम्परमाप्नुहि।।१०२।।
त्वन्नाम्नैव च विख्यातिं तोयं यास्यति तद्ध्रुवम्।।१०३।।

रैभ्य कहते हैं—अयोध्या एक परमपावन तीर्थ है। तुम तत्काल वहां जाकर स्नान करो। इससे तुमको पुनः सुरूपता का लाभ होगा। आज से वह जल तुम्हारे नाम से प्रख्यात होगा। यह निश्चित है।।१०२-१०३।।

अगस्त्य उवाच

एवंसाविप्रवचसाविदधेसर्वमादरात्। सुन्दरी साऽभवत्क्षिप्रंतत्स्थानंख्यातिमाययौ॥१०४॥
अत्र स्नानंमुनिश्रेष्ठ यः कुर्याद्विधिवज्जनः। सौन्दर्यं परमं तस्य भवेत्तत्र न संशयः॥१०५॥

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—तदनन्तर उर्वशी ब्राह्मण के वाक्य का आदर करके अयोध्या गयी तथा उनके कहे सभी अनुष्ठान को सम्पन्न करके वह तत्काल पुनः सौन्दर्य युक्त हो गयी। जहां उसने स्नान किया था, उस स्थान का नाम उर्वशीकुण्ड कहा गया। हे मुनिप्रवर! जो मानव इस महातीर्थ में सविधि स्नान करता है, उसे परम सौन्दर्य की प्राप्ति हो जाती है। इसमें संशय नहीं है।।१०४-१०५।।

भाद्रे शुक्लतृतीयायां यात्राप साम्वत्सरी भवेत्।
विष्णुरत्र जनैः पूज्यः सर्वकामार्थसिद्धये॥१०६॥
एवंकुर्वन्नरोविद्वान्विष्णुलोकेवसेत्सदा। नरोवा यदिवानारीसर्वान्कामानवाप्नुयात्॥१०७।
घोषार्ककुण्डं परममुर्वशीकुण्डदक्षिणे। वर्तते मुनिशार्दूल! सर्वपापापहं सदा॥१०८॥
यत्र स्नानेन दानेन सूर्य्यलोके महीयते। एतत्तीर्थस्य सदृशं नापरं विद्यते क्वचित्॥१०९॥
व्रणी कुष्ठी दरिद्री वा दुःखाक्रान्तोऽपि यो नरः।
करोति विधिवत्स्नानं सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥११०॥
रविवारे विशेषण कर्त्तव्यं स्नानमादरात्।
भाद्रे मासि तथा माघे शुक्लषष्ठ्यां प्रयत्नतः॥१११॥
कर्त्तव्यंविधिवत्स्नानंसूर्यलोकाभिकाङ्क्षया। पौषेमासि तथा स्नाने सूर्यवारेविशेषतः॥११२॥
सप्तम्यां रवियुक्तायां स्नानं बहुफलप्रदम्। घोषाभिधोऽभवत्पूर्वं सूर्यवंशे नरेश्वरः॥११३॥

भाद्रमासीय शुक्ला तृतीया के दिन उर्वशीकुण्ड की संवत्सरी यात्रा होती है। मानवगण सर्वकामसिद्धि हेतु यहां विष्णुपूजा करते हैं। जो विद्वान् व्यक्ति ऐसा करते हैं, वे विष्णुलोक में निवास करते हैं। मनुष्य हो अथवा नारी ही हो, इस तीर्थ में सबकी सभी कामनायें पूरी हो जाती हैं। हे मुनिशार्दूल! उर्वशी कुण्ड के दक्षिण में परम घोषार्क कुण्ड विद्यमान है। इस कुण्ड में स्नान करने से सर्वपाप समूह नष्ट हो जाता है। यहां स्नान-दान करने से मानव सूर्यलोक में पूजित होता है। इस घोषार्क कुण्ड के समान अन्य तीर्थ कहीं नहीं हैं। व्रणी-कुष्ठी-दरिद्र तथा दुःखाक्रान्त मानव इस तीर्थ में यथाविधि स्नान करके सर्वकामना लाभ करते हैं। विशेषतः रविवार के दिन आदरपूर्वक इस कुण्ड में स्नान करना चाहिये। सूर्यलोककामी मानव भाद्र तथा माघ मासीय शुक्लपक्ष की षष्ठी के दिन प्रयत्नपूर्वक इस तीर्थ में यथाविधि स्नान करें। पौषमासीय रविवार को भी घोषार्क कुण्ड में स्नान करना प्रशस्त है। यदि यह रविवारी तिथि को पड़ती है, तब यह अधिक फलप्रद होगी। पूर्वकाल में घोष नामक एक राजा सूर्यवंश में उत्पन्न हुये थे।।१०६-११३।।

समुद्रमेखलामेकः पृथिवीं समपालयत्। यस्यकीर्त्याप्रकाशन्तेत्रिलोकीमण्डलानिवै॥११४॥
यः प्रतापात्स्फुरन्भाति प्रभाकर इवाऽपरः। प्रचण्डतरदोर्दण्डखण्डितारातिमण्डलः॥११५॥
स कदाचित्प्रजापालो मन्त्रिविन्यस्तभूतलः। बभ्राम मृगयासक्तो वनेऽतिगहनद्रुमे॥११६॥

ये अद्वितीय राजा घोष समुद्र से परिवृता पृथिवी का सम्यक् शासन करते थे। उनकी कीर्त्ति से त्रैलोक्य मण्डल प्रकाशित था। वे अपने प्रताप से प्रदीप्त द्वितीय सूर्य की तरह प्रतिभात हो रहे थे। इनके प्रचण्ड प्रताप से दुर्दान्त शत्रुगण खण्डित हो जाते थे। ये प्रजापालक घोष एक बार अपने मन्त्रियों पर राज्य भार छोड़कर शिकार करने के विचार से पेड़ों से घिरे अरण्य में घूमने लगे।।११४-११६।।

स राजा पूर्वजन्मोत्थपापैरशुभसूचकैः।
कृमिव्याप्तकराम्भोजः सुन्दरोऽपि गतस्मयः॥११७॥
मृगयायामभूदेकः कदाचित्पर्यटन्वने। वराहसिंहहरिणान्निघ्नन्गच्छन्नितस्ततः॥११८॥
तृषाक्रान्तोम्लानतनुःसरोपश्यत्पुरो नृपः। ददर्शतत्रच मुनीन्स्नानसन्ध्यादितत्परान्॥११९॥
ततोविधिवदाचम्य स्नानञ्चक्रेनरेश्वरः। ततो दिव्यशरीरोऽभूदानन्दामलमानसः॥१२०॥
मुनिभिस्तीर्थमाज्ञाय चक्रेसूर्य्यस्तुतिं प्रियाम्॥१२१॥

राजा घोष परम सुन्दर थे। उनमें अहंकार नहीं था, तथापि उनके करकमल कृमियुक्त थे। पूर्वजन्म में उन्होंने जो पाप किया था, वह कृमियुक्त हाथ उसी का सूचक था। राजा घोष एकाकी ही मृगयार्थ वन में घूम रहे थे। उन्होंने वहां सिंह, वराह तथा हरिणों का वध किया तथा इतःस्ततः थककर प्यास से पीड़ित हो गये। वे म्लानमुख भी हो गये थे। तभी उन्होंने सामने एक सरोवर देखा। उन्होंने देखा कि मुनिगण वहां स्नान कर रहे हैं तथा सन्ध्यावन्दनादि में तत्पर हैं। तदनन्तर नरेश्वर घोष ने यथाविधि आचमन करके वहां स्नान किया। देखते-देखते उनका शरीर मनोहर हो गया। इस आनन्द के कारण उनका मन भी निर्मल हो गया। राजा को उन मुनिगण से यह ज्ञात हुआ कि यह एक तीर्थ है। वहां वे सूर्य को प्रिय लगने वाली स्तुति करने लगे।।११७-१२१।।

राजोवाच

भगवन्देवदेवेश नमस्तुभ्यं चिदात्मने। नमः सवित्रे सूर्याय जगदानन्ददायिने॥१२२॥
प्रभागेहाय देवाय त्रयीभूताय ते नमः। विवस्वते नमस्तुभ्यं योगज्ञाय सदात्मने॥१२३॥
पराय परमेशाय त्रिलोकीतिमिरच्छिदे। अचिन्त्याय सदातुभ्यं नमो भास्करतेजसे॥१२४॥
योगप्रियाय योगाय योगज्ञाय सदा नमः। ॐकाराय वषट्काररूपिणे ज्ञानरूपिणे॥१२५॥
यज्ञाय यजमानाय हविषे ऋत्विजे नमः। रोगघ्नाय स्वरूपाय कमलानन्ददायिने॥१२६॥
अतिसौम्यातितीक्ष्णाय सुराणाम्पतये नमः।
सत्रासायनमस्तुभ्यंभक्तत्राय प्रियात्मने॥१२७॥
प्रकाशकाय सततं लोकानांहितकारिणे। प्रसीद प्रणतायाऽद्य मह्यं भक्तिकृतेस्वयम्॥१२८॥

राजा कहते हैं—हे भगवान्! आप चिदात्मा हैं। हे देवदेवेश! आपको प्रणाम! मैं ज्ञानानन्द दाता सविता

सूर्य को नमस्कार करता हूं। योगप्रिय, योगरूप तथा योगज्ञ को प्रणाम! जो यज्ञ, यजमान, हरि तथा ऋत्विक् हैं, मैं उन सूर्य को प्रणाम करता हूं। जो पद्म को आनन्द देने वाले (अर्थात् सूर्योदय होने पर पद्म खिलता है) हैं, जिनका स्वरूप अतीव सौम्य है, जो अतितीक्ष्ण हैं, उन रोगघ्न हरिरूप को प्रणाम! हे प्रियात्मा! आप यज्ञमुक् हैं तथा भक्त के त्राता हैं। आपको प्रणाम! आप सतत् प्रकाशमान तथा लोकहितकारी हैं। मैं आपके प्रति भक्ति करता हूं। मैं प्रणत हूं। अब मुझ पर आप प्रसन्न हों।।१२२-१२८।।

अगस्त्य उवाच

इत्येवं ब्रुवतस्तस्य स प्रसन्नोरविःस्वयम्। आविर्बभूवसहसा भक्तस्यप्रियकाम्यया।
उवाच मधुरं वाक्यं प्रश्रयानतमूर्द्धजम्।।१२९।।

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—राजा घोष द्वारा इस प्रकार से स्तुति करने से सूर्यदेव उन पर प्रसन्न हो गये। वे भक्त का प्रिय करने के लिये सहसा आविर्भूत होकर मधुर वाणी द्वारा राजा से कहने लगे।।१२९।।

रविरुवाच

वरम्वरय राजेन्द्र! प्रसन्नोऽस्मि तवाग्रतः। ददामि तद्वरं तेऽद्ययत्त्वयामनसेप्सितम्।।१३०।।

सूर्यदेव कहते हैं—हे राजेन्द्र! मैं प्रसन्न होकर तुम्हारे समक्ष आया हूं। वर मांगों। तुम जो भी वर मांगोगे, वह मैं प्रदान करूंगा।।१३०।।

राजोवाच

भगवन्भास्कराऽनन्त! प्रयच्छसिवरं यदि। मन्नाम्ना कृतमूर्त्तिस्तेतिष्ठत्वत्रसदाविभो।।१३१।।

राजा कहते हैं—हे प्रभु भगवान् भास्कर! हे अनन्त! यदि आप वरदान देना चाहते हैं, तब आप मेरे नाम से यहां मूर्त्ति रूप से सदा निवास करिये।।१३१।।

रविरुवाच

एवमस्तु मनुष्येन्द्रतववाञ्छामनोहरा। एतत्स्तोत्रंत्वयोक्तं मे ये पठिष्यन्तिमानवाः।।१३२।।
तेभ्यस्तुष्टः प्रदास्यामि सर्वान्कामान्नरेश्वरः।
तत्तत्स्थानं परांख्यातिं त्वन्नाम्ना यास्यति क्षितौ।।१३३।।
सर्वान्कामानवाप्नोति योऽत्र स्नानं समाचरेत्। मद्भक्तेनसदाराजन्कर्त्तव्यंस्नानमत्र वै।।१३४।।
यं यं काममिहेच्छेत तं तं काममवाप्नुयात्।।१३५।।

सूर्यदेव कहते हैं —हे मनुजेन्द्र! यही हो। तुम्हारी अभिलाषा अत्यन्त मनोरम है। हे नरेश्वर! जो सब लोग तुम्हारे द्वारा पठित मेरा यह स्तव पाठ करेंगे, मैं उनके प्रति प्रसन्न होकर समस्त अभिलाषा प्रदान करूंगा। यह स्थान पृथिवी पर तुम्हारे नाम से प्रसिद्ध होगा। जो मानव यहां स्नान करेगा, उसकी सब इच्छा पूर्ण होगी। हे राजन्! मेरा भक्त यहां सतत् स्नान करे। वह यहां जो कामना करेगा, उसे वह सब लाभ होगा।।१३२-१३५।।

इति दत्त्वा वरंदेवः कृपया परया युतः। भास्वान्सहस्त्रकिरणस्तदाऽन्तर्द्धानमाययौ।।१३६।।
राजा भास्करदेहोत्थां रविमूर्त्तिमनुत्तमाम्। तत्रसंस्थापयामासपूजयामासचस्वयम्।।१३७।।

घोषार्ककुण्डं तन्नाम्ना तत्र ख्यातिंजगामह।
यत्र स्नानान्नरो राजन्सूर्य्यलोकेवसेत्सदा॥१३८॥
इति रुचिरविधानैस्तूर्णमादित्यमूर्त्तिं विमलपरम भक्त्या पूजयित्वाऽऽदरेण।
तदमृतमयकुण्डे स्नानमादौ विधाय प्रचुरविमलकीतिः सूर्यलोकेवसेत्सः॥१३९॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डेऽयोध्यामाहात्म्ये बृहस्पतिकुण्डरुक्मिणीकुण्डधनयक्षतीर्थवसिष्ठकुण्डसागरकुण्डयोगिनीकुण्डोर्वशीकुण्डघोषार्क-कुण्डमाहात्म्य वर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः।।७।।

अगस्त्य कहते हैं—सहस्रकिरण देव सूर्य परम कृपा परायण होकर यह वरदान देने के उपरान्त वहां से अन्तर्हित् हो गये। मेदिनी पति घोष भी सूर्यदेव के देह से उत्थित अत्युत्तम प्रतिमूर्त्ति को वहां संस्थापित करके उनकी पूजा करने लगे। तब से यह तीर्थ राजा घोष के नाम के अनुसार घोषार्क कुण्ड नाम से प्रसिद्ध हो गया। राजा घोष ने इसी प्रकार् मनोज्ञ विधान से विमल मन तथा परम भक्ति के आनन्दपूर्वक आदित्य मूर्त्ति का पूजन किया तथा उस अमृतमय कुण्ड में स्नान करके प्रचुर विमल कीर्त्तियुक्त होकर सूर्यलोक में गमन किया।।१३६-१३९।।

।।सप्तम अध्याय समाप्त।

❖❖❖

अष्टमोऽध्यायः

रतिकुण्ड, महारत्नतीर्थ, दुर्भर महामरतीर्थ, महाविद्यातीर्थ, सिद्धपीठक्षीरेश्वर-सीताकुण्ड-सुग्रीवतीर्थ, हनुमत् कुण्ड, विभीषण सरतीर्थ-अयोध्या यात्रा विधिक्रम वर्णन-देव गौ आविर्भाव वर्णन, शीतलातीर्थ वर्णन महाक्षेत्र महिमा

अगस्त्य उवाच

घोषार्कतीर्थाद्विप्रर्षे पश्चिमे दिक्तटे स्थितम्। रतिकुण्डमिति ख्यातं सर्यपापहरंसदा॥१॥
यत्र स्नानेन दानेन परां कान्तिमवाप्नुयात्। तत्पश्चिमदिशाभागे कुसुमायुधनामकम्॥२॥
कुण्डं प्रसिद्धमतुलं सर्वकामार्थसिद्धये। यत्र स्नानेन दानेन कन्दर्पसदृशाकृतिम्।
लभते ना विधानेन मुने! नास्त्यत्र संशयः॥३॥
रतिकुण्डे तथा विप्र! कुसुमायुधकुण्डके। श्रद्धया कुरुते स्नानं ससौख्यपरमोभवेत्॥४॥

कुण्डद्वयेत्र मिथुनं यत्स्नानं कुरुते किल। रतिकामाविवख्यातौसदातौसुन्दरौतदा॥५॥
तस्मादत्र विधानेन स्नातव्यं धर्मकाङ्क्षिभिः। दानं देयंयथाशक्त्या रतिकन्दर्पतुष्टये॥६॥

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—हे विप्रर्षि! घोषार्क तीर्थ के पश्चिमोत्तर दिक्भाग में सतत् विख्यात सर्वपापहारी रतिकुण्ड विद्यमान है। इसमें स्नान करके मनुष्य परमकान्तिमान् हो जाता है। रति कुण्ड के पश्चिम में कुसुमायुध नामक प्रख्यात कुण्ड है। यह कुसुमायुध कुण्ड सर्वसिद्धिप्रद है। इसकी कहीं तुलना नहीं है। हे मुनिवर! मनुष्य इस कुण्ड में स्नान-दान करके सर्वत्र सुखलाभ करता है। इसमें सन्देह नहीं है। हे विप्र! जो मानव रति तथा कुसुमायुध (कामदेव) इन दोनों कुण्ड में स्नान करता है, उसे कामदेव के समान परम सौन्दर्य का लाभ होता है। अतएव इन कुण्डद्वय में यथाविधि स्नान करें। विशेषतः धर्म चाहने वाला मानव रति-कामदेव की प्रसन्नतार्थ इस तीर्थ में यथाशक्ति दान भी प्रदान करें।।१-६।।

भवेतां नियतं तस्य सन्तुष्टौ रतिमन्मथौ। माघे विशदपञ्चम्यांयत्र स्नानंशुभप्रदम्॥७॥
रतिकुण्डे पुरः स्नात्वा पश्चात्कन्दर्प्पकुण्डके। स्नातव्यं तद्दिनेविप्रमिथुनेनप्रयत्नतः॥८॥
रतिकन्दर्प्पयोः पूजा विधातव्या विशेषतः। वस्त्रादिभिरलङ्कारैः सम्पूज्यौ द्विजदम्पती॥९॥
सर्वान्कामानवाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा॥१०॥
चन्द नागुरुकर्पूरकस्तुरीकुङ्कुमादिभिः। वासोभिर्विविधैः पुष्पैः पूजयेद्द्विजदम्पती॥११॥
एवं कृते न सन्देहो रतिकन्दर्पतुष्टये। तद्व्रजेन्मिथुनं विप्र! रतिकन्दर्प्पतुल्यताम्॥१२॥
कुसुमायुधकुण्डात्तु प्रतीच्यां दिशि सस्थितम्।
मन्त्रेश्वर इति ख्यातं तत्स्थानं भुवि दुर्लभम्॥१३॥
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा मन्त्रेश्वरं विभुम्। न तेषांपुनरावृत्तिःकल्पकोटिशतैरपि॥१४॥

इस प्रकार से करने वाले मनुष्य दम्पति के प्रति कामदेव तथा रति सतत् प्रसन्न होते हैं। हे विप्र! माघमासीय शुक्ला पञ्चमी तिथि के दिन कुण्डद्वय में स्नान शुभप्रद है। पति-पत्नी मिलकर प्रथमतः रविकुण्ड में तत्पश्चात् कामकुण्ड में प्रयत्नतः स्नान करें। तदनन्तर यत्नतः रति तथा कामदेव की पूजा करके वस्त्रालंकारादि द्वारा द्विजदम्पति की अर्चना करें। इस प्रकार से सर्वाभीष्ट लाभ होता है। इसमें संशय नहीं है। तदनन्तर चन्दन-अगुरु-कर्पूर-कस्तूरी-कुंकुम तथा विविध वस्त्र तथा पुष्पों से द्विज दम्पति की पूजा करें। हे द्विज! जो मनुष्य ऐसा करता है, वह रति कामदेव जैसा होकर दाम्पत्य सुख का अनुभव करता है। हे विप्र! कुसुमाधव कुण्ड में पश्चिम की ओर विख्यात महेश्वर कुण्ड स्थित है। यह महेश्वर कुण्ड भूमण्डल में दुर्लभ है। जो मानव इस तीर्थ में स्नान करता है तथा विभु महेश्वर का दर्शन करता है, शतकोटि कल्पों में भी उसका पुनर्जन्म नहीं होता।।७-१४।।

पुरा रामो देवकार्यं विधायामलकर्मकृत्। कालेन सह सङ्गम्य मन्त्रं चक्रे नरेश्वरः॥१५॥
स्वर्गं प्रति प्रयाणाय यत्रस्नातोजितेन्द्रियः। तत्रैवस्थापितं लिङ्गंमन्त्रेश्वरइतिश्रुतम्॥१६॥
तदुत्तरे सरो रम्यं कुमुदोत्पलमण्डितम्। तत्र स्नानं तथा दानं नानाफलमुत्तमम्॥१७॥

पूर्वकाल में अमल कर्म वाले नरेश्वर रामचन्द्र देवकार्य को सम्पन्न करके काल के साथ यहीं मन्त्रणा कर रहे थे। जितेन्द्रिय राम ने स्वर्ग जाने की कामना से इस महेश्वर तीर्थ में स्नान किया। यहां महेश्वर नामक

विश्रुत लिङ्ग विराजित है। महेश्वर के उत्तर में एक रम्य सरोवर है। वह कुमुद तथा कमल माला से अलंकृत है। इस सरोवर में स्नान-दानादि से अत्युत्तम फल मिलता है।।१५-१७।।

चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां यात्रा साम्वत्सरी स्मृता। तत्र स्नानेनदानेनब्राह्मणानांचपूजनात्।
अक्षयं स्वर्गमाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा॥१८॥
मन्त्रेश्वरस्य महिमा नहि केनापि शक्यते। सम्यग्वर्णयितुं विप्र! य उत्तमफलप्रदः।
मन्त्रेश्वरसमं लिङ्गं न भूतं न भविष्यति॥१९॥
सुगन्धिपुष्पधूपादिकुसुमाद्यनुलेपनैः। पूजनीयः प्रयत्नेन सर्वकामार्थसिद्धिदः॥२०॥
एवं कृते न सन्देहो मुक्तिस्तस्य करे स्थिता। तत्रैवोत्तरभागे तु शीतला वर्ततेऽनघ॥२१॥
तां सम्पूज्य नरो विद्वान्सर्वपापैः प्रमुच्यते। सर्वदा पूजनं तस्यां सोमवारेविशेषतः।
कर्त्तव्यं सुप्रयत्नेन नृभिः सर्वार्थसिद्धये॥२२॥
विस्फोटकादिकभये नरैश्च समुपस्थिते। कर्तव्यं पूजनं सम्यग्रोगादिभयनाशनम्॥२३॥
तदुत्तरे तु तत्रैव देवी बन्दीति विश्रुता। यस्याः स्मरणमात्रेण निगडादिभयं नहि॥२४॥
राज्ञा क्रुद्धेन वे बद्धाः शृङ्खलानिगडादिभिः।
बन्दीं संस्मृत्य देवीं तु मुक्ताः स्युस्तत्क्षणाद्धि ते॥२५॥

चैत्र शुक्ला चतुर्दशी को इस तीर्थ की संवत्सरी यात्रा होती है। इस तीर्थ में स्नान, दान करें तथा ब्राह्मण भोजन आदि से ब्राह्मण की अर्चना करें। इससे अक्षय स्वर्गलाभ होता है। हे विप्र! कोई इस उत्तम फलप्रद मन्त्रेश्वर की महिमा का सम्यक् वर्णन करने में समर्थ नहीं है। मन्त्रेश्वर के समान लिंग ही नहीं है। होगा भी नहीं। परम प्रयत्नपूर्वक सुगन्धि धूप, दीप, पुष्प तथा अनुलेपनादि से सर्वकामार्थ सिद्धिप्रद लिङ्गेश्वर की पूजा करें। ऐसा करने से मुक्ति मानवों के लिये करतलगत हो जाती है। इसमें सन्देह नहीं है। हे अनघ! मन्त्रेश्वर के उत्तर दिक्भाग में शीतला देवी विद्यमान हैं। विद्वान् मानव शीतला की सम्यक् पूजा द्वारा समस्त कलुष से दूर हो जाता है। सभी काल में शीतला की पूजा हो सकती है। विशेषतः सोमवार को सर्वार्थसिद्धि कामना वाला व्यक्ति यत्नतः शीतला की पूजा करे। विस्फोटक आदि भीति होने पर मानवगण शीतला पूजा करे। शीतला की सम्यक् पूजा होने पर रोग आदि भय नष्ट हो जाते हैं। शीतला के उत्तर में शीतला के पास में ही विश्रुता बन्दीदेवी विद्यमान हैं। बन्दीदेवी के स्मरण से ही निगड़ादि बन्धभय दूर हो जाता है। जो राजकोप के कारण निगड़ शृङ्खलादि से बद्ध हो जाते हैं, बन्दी देवी के स्मरण से वे मुक्त होते हैं। इसमें सन्देह ही नहीं है।।१८-२५।।

यात्रा तस्याः प्रयत्नेन कर्तव्या यत्नतोनरैः। मङ्गलेहिविशेषेणसर्वकामार्थासिद्धिदा॥२६॥
गन्धैःपुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैरति च सुव्रत!। नैवेद्यैर्विविधैर्वाऽपि पूजनीया प्रयत्नतः॥२७॥
वन्दीप्रीत्यैमुनिश्रेष्ठ! देयं ब्राह्मणभोजनम्। एवं कृते नसन्देहः सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥२८॥
तदुत्तरस्मिंस्तत्रैव चुडकी भुविकीर्त्तिता। वर्ततेपरमासिद्धिरूपिणीस्मरणान्नृणाम्॥२९॥

सुसंदिग्धेषु कार्येषुभयेचसमुपस्थिते। यस्याः स्मरणतो नृणांसर्व सिद्धिःप्रजायते॥३०॥
अग्रे तस्याः सदाकार्यानृभिरङ्गुष्ठतोध्वनिः। दीपदानं प्रयत्नेन कर्त्तव्यंनियतात्मभिः॥३१॥
सर्वाभीष्टप्रदं नृणां दीपदानं प्रशस्यते। चतुर्दश्यां चतुर्दश्यां तस्या यात्रा विनिर्मिता॥३२॥

हे सुव्रत! मनुष्य यत्नतः बन्दी देवी की यात्रा करे। विशेषतः मानव मंगलवार को सर्वकार्य सिद्धिप्रदा बन्दी देवी की गन्ध-पुष्प-धूप-दीप तथा विविध नैवेद्य से प्रयत्नपूर्वक पूजा करें। हे मुनिप्रवर! बन्दी देवी को प्रसन्न करने हेतु ब्राह्मणों को भोजन दान करना चाहिये। यह करने से मनुष्य की कामना निःसंदेह पूर्ण हो जाती है। इसमें संदेह नहीं है। बन्दी देवी के उत्तर में उनके समीप चूड़की स्थित हैं। ये परमा सिद्धिरूपा हैं। मनुष्य को इनके स्मरण से ही प्रसिद्ध विषयों की सिद्धि प्राप्त हो जाती है। किसी प्रकार का भय उपस्थित होने पर तथा संदिग्ध कार्यों में इनके स्मरण से सर्वसिद्धि लाभ होता है। नियतात्मा मनुष्यगण को चूड़की देवी के पास जाकर पहले अंगुष्ठध्वनि करके यत्नतः दीपदान करना चाहिये। चुड़की के समीप दीपदान द्वारा मानवगण को सर्वाभीष्ट फल मिलता है। प्रत्येक चतुर्दशी के ही दिन चुड़की की यात्रा निर्दिष्ट की गयी है।।२६-३२।।

ततः पूर्वदिशाभागे वर्त्तते तीर्थमुत्तमम्। महारत्नइतिख्यातं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्॥३३॥
यत्र स्नानेनदानेनपूजयाचद्विजन्मनाम्। सर्वकामार्थसिद्धिःस्यान्नात्रकार्याविचारणा॥३४॥
भाद्रे कृष्णचतुर्दश्यां यात्रा साम्वत्सरी स्मृता।
यात्राऽऽस्ते किल मुख्याऽस्य महारत्ना इति श्रुता॥३५॥
महारत्नइति ख्यातं तस्मात्तीर्थमनुत्तमम्। तत्र दानं प्रकर्त्तव्यं द्विजसन्तोषकारकम्॥३६॥
नारीभिरपि विप्रर्षे कर्त्तव्यो जागरोत्सवः। वीर्यसौभाग्यसम्पन्नसर्वसौख्यायसर्वदा।
तत्र स्नानं प्रयत्नेन कर्त्तव्यं श्रद्धया नरैः॥३७॥
ततो नैर्ऋत्यदिग्भागे दुर्भराख्यं सरःशुभम्। वर्तते सुकृतोदारं महाभरसरस्तथा॥३८॥

चुड़की के पूर्व दिक्‌भाग में सर्वतीर्थोत्तम उत्तमतीर्थ विख्यात महारत्न विद्यमान है। इस महारत्न तीर्थ में स्नान-दान-द्विजगण की पूजा करने से सर्वकार्य सिद्ध हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं है। भाद्रकृष्ण चतुर्दशी के दिन महारत्न तीर्थ की सांवत्सरी यात्रा सुसमाहित होती है। इस मुख्य यात्रा का नाम है विश्रुता महारत्ना। इसीलिये इस अत्युत्तम तीर्थ का नाम है महारत्न! इस तीर्थ में द्विजगण के सन्तोष साधनार्थ दान करना चाहिये। हे विप्रर्षि! नारीगण भी यहां जागरणोत्सव सुसमाहित करें। मनुष्यगण यहां वीर्य, सौभाग्य, सम्पत्ति तथा सुखप्राप्ति हेतु श्रद्धा तथा यत्न के साथ सतत् इस तीर्थ में स्नान करें। महारत्नतीर्थ के नैर्ऋत् दिक् भाग में दुर्भर नामक शुभ सरोवर विद्यमान है। यहां सुकृतोदर महाभर नामक एक और सरोवर भी है।।३३-३८।।

तत्र स्नानादवाप्नोति सदा स्वर्गपदं नरः। धनं बहुविधं देयंवासांसि विविधानि च॥३९॥
शिवपूजाप्रकर्त्तव्या स्नात्वा कुण्डद्वये नरः। नानाविधेन भावेन भक्त्यापरमयायुतैः॥४०॥
गन्धादिभिः शुभैः पुष्पैरर्च्चनीयो महेश्वरः।
नीलकण्ठोऽन्धकारातिराराध्यो योगिनामपि॥४१॥
इति ध्यात्वा शिवंसार्द्धंनिष्पापंप्रयतोनरः। सर्वकामानवाप्याशुशिवलोकेमेवसेत्सदा॥४२॥

एवं कृत्वा नरो विप्र सर्वपापैः प्रमुच्यते। महाभरे वरे तीर्थे तथा दुर्भरसञ्ज्ञके॥४३॥

भाद्रकृष्णाचतुर्दश्यां यः कुर्य्याच्छ्रद्धयाऽन्वितः।

शिवपूजाञ्च विधिवद्द्विजपूजां विशेषतः॥४४॥

यः करोति नरोभक्त्या शिवलोके स सम्वसेत्। एवंकुर्वन्नरोविद्वान्नमुह्यतिकदाचन॥४५॥

विष्णुरुद्रौ चतस्यातिसुप्रसन्नौ सनातनौ। तयोः स्मरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते॥४६॥

मानव इस सरोवरद्वय में स्नान करके बहुविध धन तथा विविध वस्त्र दान करके विविध प्रकार से परम भक्तिपूर्वक गन्धादि तथा सुशोभन पुष्पों द्वारा महेश्वर शिव का पूजन करें। शिव का ध्यान इस प्रकार से है। यथा—अन्धक शत्रु नीलकण्ठ योगीगण के आराध्य हैं। मानव निष्कलुष शिव का ध्यान इस प्रकार करे। इससे उसकी कामनायें शीघ्र प्राप्त हो जाती हैं तथा वह सतत् शिवलोक में निवास करता है। हे विप्र! मनुष्य इस प्रकार से सर्वपापरहित हो जाता है। तीर्थप्रवर महाभर तथा दुर्भर सरोवरद्वय में जो मनुष्य श्रद्धाभक्ति के साथ भाद्रकृष्ण चतुर्दशी के दिन यथाविधि शिवपूजा तथा विशेषत भक्ति के साथ द्विजपूजा करता है, वह सतत् शिवलोक में निवास करता है। जो विद्वान् मानव ऐसा करता है, वह कदापि मोहित नहीं होता। सनातन विष्णु तथा रुद्र सदा उन पर प्रसन्न हो जाते हैं। उनके स्मरण मात्र से व्यक्ति सर्वपाप रहित हो जाता है।।३९-४६।।

अतः किं बहुनोक्तेन विप्र! तीर्थमनुत्तमम्। सर्वपापौघशमनं सर्वाभीष्टकरं सदा॥४७॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि तीर्थमन्यच्छुभावहम्।

यत्र यात्रा तथा दानं विना भाग्यं न सम्भवेत्॥४८॥

ईशानेदुर्भरस्थानान्महाविद्याभिधंमहत्। तस्यदर्शनतोनृणांसिद्धयःस्युःकरेस्थिताः॥४९॥

तदग्रे सरसि स्नात्वा महाविद्यां तु यो नरः।

पश्यति श्रद्धया भक्त्या स याति परमां गतिम्॥५०॥

सिद्धपीठंतथाख्यातंसम्यक्प्रत्ययकारकम्। तत्र पूजाविधातव्याभक्त्यापरमयाद्विज!॥५१॥

मन्त्रं यः श्रद्धया विप्र शैवंशाक्तमथापिवा।

गाणपत्यं वैष्णवं वा तत्र यः प्रयतोनरः॥५२॥

एकाग्रमानसोविद्वन्नाराध्यावर्तयेत्सदा। तस्यसिद्धिर्भवेन्नित्यं चमत्कारोभवेद्द्विज॥५३॥

हे द्विज! अधिक क्या कहूं? ये तीर्थ अत्युत्तम, सर्वपापहारी तथा सभी अभीष्ट को प्रदान करने वाले हैं। अब मैं अन्य ऐसे तीर्थों का वर्णन करता हूं जो शुभप्रद हैं, तथापि वहां की यात्रा तथा वहां दान कर सकना बिना उत्तमभाग्य के संभव ही नहीं है। यह तीर्थरूप उत्तम सरोवर अत्यन्त दुर्लभ है तथा दुर्भर से ईशानकोण में विद्यमान है। इस महातीर्थ का नाम है महाविद्या। इस महाविद्या तीर्थ के दर्शन मात्र से मनुष्यों को सिद्धियां करतलगत हो जाती हैं। महाविद्या के पुरोभाग में एक सरोवर विद्यमान है, जो मनुष्य पहले इस सरोवर में स्नान करके श्रद्धा भक्तियुक्त होकर इस महाविद्या तीर्थ का दर्शन करता है, उसे परमगति की प्राप्ति होती है। इस महाविद्यातीर्थ में एक विख्यात सिद्धपीठ है। यह सिद्धपीठ सम्यक् प्रत्ययकारक है। (प्रत्यय कारक = श्रद्धाकारक) अर्थात् यह सम्यक् श्रद्धा को जन्म देने वाला सिद्धपीठ है। इसकी श्रद्धाभक्ति के साथ पूजा करनी चाहिये। हे

द्विज! जो मानव परम श्रद्धा के साथ शैव-शाक्त-गाणपत्य किंवा वैष्णवमन्त्र द्वारा एकाग्र मन से आराधना करके सिद्धपीठ के समीप सतत् निवास करता है, हे विद्वान्! उसे अपूर्व सिद्धिलाभ होता है।।४७-५३।।

तस्मादत्रप्रकर्तव्यं जपादिकमतन्द्रितैः। अष्टम्याञ्चनवम्याञ्चयात्रास्यात्प्रतिमासिकी।।५४।।
देयान्यन्नानि बहुशो नानाविधफलानिच। क्षीरेण स्नपनं कार्यं पूजनीया प्रयत्नतः।।५५।।
उच्चाटनादीन्यपि च मोहनादिविशेषतः। अत्रस्थानेविशेषेणदुष्टमन्त्रोऽपिसिध्यति।।५६।।
सिद्धस्थाने परं मोक्षं वशीकरणमुत्तमम्। जपो होमस्तथा दानं सर्वपक्षयतां व्रजेत्।।५७।।
आश्विने शुक्लपक्षस्य नवरात्रिषु सुव्रत!। यत्र गत्वा नरो विप्र! सर्वपापैः प्रमुच्यते।।५८।।
यदा पूर्वं विनिर्ज्जित्य रावणं लोकरावणम्। समागतोरघुपतिः सीतालक्ष्मणसंयुतः।।५९।।
यत्र गत्वा पदा वीरो भरतोरामकाङ्क्षया। स्थितः सानुचरःश्रीमाञ्छ्रियापरमयायुतः।।६०।।
तत्रागमत्सुरगवी प्रादुर्भूता स्रवत्स्तनी। तत्स्तनेभ्यःप्रसुस्राव दुग्धं बहुणाधिकम्।।६१।।

अतएव अतन्द्रित मानव इस सिद्धपीठ में जप आदि करे। प्रत्येक मास की अष्टमी तथा नवमी तिथि के दिन इस सिद्धपीठ की मासिक यात्रा की जाती है। इसमें यहां अनेक अन्नदान तथा फलदान करना चाहिये। तब प्रयत्न पूर्वक क्षीर द्वारा पीठ को स्नान कराकर पूजा करें। इस पीठ में उच्चटनादि तथा मोहनादि की सिद्धि होती है। यहां परम मोक्षलाभ होता है तथा वशीकरण के लिये भी यह पीठ उपाय रूप है। यहां जप, होम, दानादि सभी अक्षय फलजनक हो जाता है। हे सुव्रत द्विज! आश्विन शुक्ला नवरात्रि के समय मनुष्य इस तीर्थ में आकर सर्वपापरहित हो जाता है। पूर्वकाल में सीता तथा लक्ष्मण के साथ रघुपति ने लोकों को रुलाने वाले रावण का वध किया तथा वे यहां आये। तभी अपने अनुचरगण के साथ श्रीमान् भरत भी राम की दर्शनाभिलाषा लेकर यहां आये तथा अत्यन्त प्रसन्न हो गये। तत्पश्चात् दोनों राजाओं (राम तथा भरत) के आगमन के पश्चात् देवलोक से प्रशस्त स्तनधारिणी देवसुरभि गौ भी उस समय उनके स्तन से नानागुणयुक्त दूध पृथिवी पर गिर रहा था।।५४-६१।।

तद्भूमिपतितं दुग्धं दृष्ट्वा वानरराक्षसाः। विस्मयं परमं जग्मुः पप्रच्छुस्ते चराचरम्।।६२।।
किमेतदिति राजेन्द्र! तानुवाच रघूद्वहः। वसिष्ठो वेत्तितत्सर्वं पृच्छामस्तंमुनिंवयम्।।६३।।
इत्युक्तास्तु ततःसर्वेवसिष्ठप्रमुखेस्थिताः। ते पप्रच्छुः प्राञ्जलयः कृत्वाचाग्रेसरंनृपम्।।६४।।
वसिष्ठोऽपि क्षणं ध्वात्वा तमुवाच निराकुलम्।
राघवम्प्रति सम्बोध्य सर्वेषामग्रतो मुनिः।।६५।।

प्रचुर मात्रा में पृथिवी पर गिर रहे दुग्ध को देखकर वानर तथा राक्षसगण अत्यन्त विस्मित हो गये। तब उन्होंने प्रभु राम के पास जाकर पूछा—"हे राजेन्द्र! यह क्या है?" राम ने उनसे कहा—"इस विषय से महर्षि वसिष्ठ सम्यक् रूपेण अवगत हैं। अब हम सब उन मुनि से पूछें।" यह निश्चित करके सभी राम को आगे करते हुए वसिष्ठ के पास आये। सभी हाथ जोड़कर उनके समक्ष बैठ गये। उन लोगों ने महर्षि से सुरभि के सम्बन्ध में प्रश्न किया। उस प्रश्न को सुनकर मुनिगण में अग्रणी महर्षि वसिष्ठ क्षण पर्यन्त ध्यान करके निराकुल राघव से कहने लगे। जो समस्त प्रश्नकर्त्ताओं में अग्रणी थे।।६२-६५।।

वसिष्ठ उवाच

श्रृणुराम महाबाहो कामधेनुरियं शुभा। समागता तव स्नेहात्प्रस्त्रवन्ती स्तनात्पयः।।६६।।
दुग्धमध्येसमुद्भूतोरुद्रस्त्वांद्रष्टुमागतः। निष्पन्नकार्य्यंदेवानांनिर्जितारातिमुत्तमम्।।६७।।
इमं सम्पूजय क्षिप्रमेतत्कुण्डस्य सन्निधौ। शीघ्रं तवमपि यत्नेन पूजयेमंशिवंशुभम्।
दुग्धेश्वरमितिख्यातं क्षीरकुण्डे पवित्रकम्।।६८।।

वसिष्ठ कहते हैं—हे महाबाहु राम! सुनिये। ये ही कल्याणप्रदा कामधेनु हैं। तुम्हारे प्रति स्नेह के कारण कामधेनु अपने स्तनों से दुग्ध क्षरण करते-करते देवलोक से यहां आई हैं। यह देखिये! आपके दर्शनों की कामना के ही कारण इनके दुग्ध क्षरित स्तनों से रुद्रदेव उद्भूत हो गये हैं। आपने शत्रुकुल का ध्वंस करके देवगण का उत्तम कार्य किया है। अब इस कुण्ड में शीघ्रता पूर्वक इन शुभप्रदायक शिव की पूजा करिये। इस परम पवित्र क्षीरकुण्ड से समुद्भूत रुद्र अब दुग्धेश्वर नाम द्वारा विख्यात होंगे।।६६-६८।।

अगस्त्य उवाच

ततो रघुपतिः श्रीमान्वसिष्ठोक्तविधानतः। पूजयामासतल्लिङ्गंदुग्धेश्वरमिति स्मृतम्।।६९।।
सीतयासत्कृतंयस्मात्तत्कुण्डंक्षीरसङ्गमम्। सीताकुण्डमितिख्यातिंजगामानुपमांततः।।७०।।
सीताकुण्डेनराः स्नात्वादृष्ट्वादुग्धेश्वरंप्रभुम्। सर्वपापैःप्रमुच्यन्तेनात्रकार्याविचारणा।।७१।।
अत्रस्नानंजपोहोमोदानञ्चाक्षयताम्व्रजेत्। सीताकुण्डेतुसम्पूज्यसीतारामौसलक्ष्मणौ।।७२।।
दुग्धेश्वरञ्च सम्पूज्य सर्वान्कामानवाप्नुयात्।
जेष्ठेमासि चतुर्दश्यां यात्रा साम्वत्सरी स्मृता।।७३।।
एवं यो विधिवत्कुर्याद्दयाधर्मविशारदः। स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा नशोचति।।७४।।

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—तत्पश्चात् श्रीमान् रघुपति राम ने वसिष्ठदेव द्वारा उपदिष्ट विधान द्वारा दुग्धेश्वर नामक उन शिव की सम्यक् पूजा किया। देवी सीता ने भी उस क्षीरकुण्ड का आदर किया। मनुष्यगण इस सीताकुण्ड में स्नान करने के उपरान्त दुग्धेश्वर रुद्रदेव का दर्शन करके अपने समस्त कलुष से निःसंदिग्ध रूपेण मुक्त हो जाते हैं। इस कुण्ड में स्नान-दान-जप तथा होम अक्षय फलप्रद हो जाता है। मानव सीताकुण्ड में लक्ष्मण-राम-सीता की पूजा करके दुग्धेश्वर की भी सम्यक् अर्चना करे। इससे उसे सभी कामनायें प्राप्त हो जाती हैं। ज्येष्ठा चतुर्दशी के दिन सीताकुण्ड की सांवत्सरी यात्रा होती है। जो दया-धर्मयुक्त मनुष्य इस विधि से सीताकुण्ड की सेवा करता है, वह उस परम लोक की प्राप्ति करता है, जहां जाने से मनुष्य को शोक होना समाप्त हो जाता है।।६९-७४।।

तत्र पूर्वादिशाभागे सुग्रीवरचितं महत्। तीर्थं तपोनिधेस्तत्र वर्तते सन्निधौ शुभम्।।७५।।
यत्रस्नात्वाचदत्त्वाचरामंसम्पूज्ययत्नतः। तस्मिन्नेवदिनेतत्रसर्वान्कामानवाप्नुयात्।।७६।।
तत्प्रत्यग्दिशि वै स्थानं हनुमत्कुण्डमित्यपि।
तस्य पश्चिमतो विप्र! विभीषणसरः शुभम्।।७७।।

तयोः स्नानेन दानेन रामसम्पूजनेन च। सर्वान्कामानवाप्नोति तस्मिन्नेवविधानतः।
इयं सा परमा मेध्याऽयोध्या धर्मनिधिः स्मृता॥७८॥

इस सीताकुण्ड के पूर्व में तपोनिधि सुग्रीव का सुग्रीव चरित नामक महातीर्थ स्थित है। तपोनिधि सुग्रीव इस शुभावह तीर्थ में निवास करते हैं। जो यहां स्नान तथा दान करके यत्नतः श्रीराम की पूजा करता है, उसी दिन उसकी सभी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। इस सुग्रीवतीर्थ के पश्चिम की ओर हनुमत्कुण्ड स्थित है। हे विप्र! हनुमत् कुण्ड के पश्चिम की ओर शुभप्रद विभीषण कुण्ड है। इन दोनों कुण्डों पर यथाविधि स्नान-दान-रामपूजन करने वाला मानव उसी दिन समस्त कामना लाभ कर लेता है। हे राम! यह जो अयोध्या को आप देख रहे हैं, इसे आप समस्त धर्म की निधि स्वरूप जानिये।।७५-७८।।

इत्युक्तास्तुततः सर्वे वसिष्ठमुनिमादरात्। पप्रच्छुर्विनयात्क्षिप्रं विभीषणपुरःसराः।
कथयस्व तपोराशे! कथामेतांसुदुर्ल्लभाम्॥७९॥
अयोध्यायाः परम्विप्र माहात्म्यं कथयन्ति यत्।
तत्सर्वं कथय क्षिप्रं श्रुत्वा माहात्म्यमुत्तमम्॥८०॥
यथा यात्रांविधास्यामःक्रमेणचविधानतः। तदस्मासुकृपां कृत्वा कथयस्वतपोनिधे॥८१॥

महर्षि वसिष्ठ का वाक्य सुनकर विभीषण आदि सभी श्रीराम के अनुचरगण ने विनय तथा आदर के साथ महर्षि से प्रश्न किया—"हे तपोराशि! इस लोक में अयोध्या का जो उत्तम माहात्म्य है, वह सब कृपया कहिये। हे विप्र! यह अयोध्या माहात्म्य अतीव दुर्लभ है। अतः आप इसे शीघ्र कहिये और हम सभी उसे सुनें। हे तपोनिधान! हम लोग इस माहात्म्य को सुनकर किस विधि द्वारा अयोध्या यात्रा सम्पन्न करें, आप हमलोगों पर कृपा करके उसे कहिये।" राम के अनुचरों का यह कथन सुनकर महर्षि वसिष्ठ कहने लगे।।७९-८१।।

वसिष्ठ उवाच

श्रृण्वन्तुमुनयःसर्वे अयोध्यामहिमाद्भुतम्। यच्छ्रुत्वासर्वपापेभ्योमुच्यतेनात्र संशयः॥८२॥
इदं गुह्यतरं क्षेत्रमयोध्याभिधमुत्तमम्। सर्वेषामेव भूतानां हेतुर्मोक्षस्य सर्वदा॥८३॥
अस्मिन्सिद्धाः सदा देवा वैष्णवं व्रतमास्थिताः।
नानालिङ्गधरा नित्यं विष्णुलोकाभिकाङ्क्षिणः॥८४॥
अभ्यस्यन्तिपरंयोगंयुक्तप्राणाजितेन्द्रियाः। नानावृक्षसमाकीर्णेनानाविहगवासिनि॥८५॥
कमलोत्पलशोभाढ्ये सरोभिः समलङ्कृते। अप्सरोगणसङ्कीर्णे सर्वदा सेवितेशुभेः॥८६॥
रोचतेहिसदावासःक्षेत्रेनित्यंहरेरिह। मन्यमानाविष्णुभक्ताविष्णौ सर्वेऽर्पितक्रियाः॥५७॥
यथामोक्षमिहायान्तिनान्यत्र हि तथा क्वचित्। अथ श्रेष्ठतमं क्षेत्रंयस्माच्चवसतिर्हरेः।
महाक्षेत्रमिदं यस्मादयोध्याभिधमुत्तमम्॥८८॥

ऋषि वसिष्ठ कहते हैं—जिस अयोध्या माहात्म्य को सुनकर मनुष्य निःसंदिग्ध रूपेण सर्वपापविनिर्मुक्त हो जाता है, उस अद्‌भुद् महिमा को सुनो। यह उत्तम अयोध्याक्षेत्र अतीय गोपनीय है। यह सभी प्राणीगण की

मुक्ति का हेतु है। इस क्षेत्र में विष्णुलोक के अभिलाषी युक्तप्राण जितेन्द्रिय देवता तथा सिद्धगण नानारूप धारण करके सतत् वैष्णवव्रत पालन तथा योगाभ्यास करते रहते हैं। यहां विविध वृक्ष समाकीर्ण हैं। इस वृक्षों पर पक्षी निवास करते हैं। अनेक सरोवरों से यह क्षेत्र भरा हुआ है। उत्पल तथा कमल की बहुलता वाले ये सरोवर अपूर्व शोभायुक्त हो रहे हैं। अप्सरायें भी सतत् इस क्षेत्र की सेवा करती रहती हैं। किम्बहुना, स्वयं हरि भी सदा इस क्षेत्र की अभिलाषा करते रहते हैं। ज्ञानी विष्णुभक्तगण विष्णु को समस्त क्रियार्पण करके इस क्षेत्र में जिस प्रकार से मोक्षलाभ प्राप्त करते हैं, ऐसा अन्य क्षेत्र में संभव ही नहीं है! अयोध्या एक महाक्षेत्र है। स्वयं हरि यहां निवास करते हैं। यह क्षेत्र सर्वोत्तम है। इस महाक्षेत्र अयोध्या की सेवा द्वारा जैसा मोक्ष प्राप्त होता है।।८२-८८।।

नैमिषे च कुरुक्षेत्रे गङ्गाद्वारे च पुष्करे। स्नानात्संसेवनाद्वाऽपि न मोक्षः प्राप्यतेतथा॥८९॥
इह सम्प्राप्ते यद्वत्तत एव विशिष्यते। प्रयागे वा भवेन्मोक्ष इह वा हरिसंश्रयात्।
सर्वस्मादपि　तीर्थाग्र्यादिदमेव　महत्स्मृतम्॥९०॥
अव्यक्तलिङ्गैर्मुनिभिःसर्वैःसिद्धैर्महर्षिभिः। इहसम्प्राप्यतेमोक्षोदुर्ल्लभोऽन्यत्रयोयतः॥९१॥
तेभ्यःप्रयच्छतिहरिर्योगमैश्वर्य्यमुत्तमम्।　आत्मनश्चैवसायुज्यमीप्सितंस्थानमुत्तमम्॥९२॥

वह मोक्ष नैमिष, कुरुक्षेत्र, गंगाद्वार, पुष्करक्षेत्र किंवा वैसे सभी क्षेत्रों का सेवन करने से प्राप्त नहीं होता। इस स्थान के सेवन से जिस मोक्ष की प्राप्ति होती है, वही मोक्ष प्रशंसित है। समस्त तीर्थों में से अयोध्या ही श्रेष्ठ है। क्योंकि प्रयाग क्षेत्र में (नाना धर्माचरण से) जो मोक्ष मिलता है, वह यहां मात्र श्रीहरि की शरण लेने से ही प्राप्त हो जाता है। इसलिये इस क्षेत्र को एक महातीर्थ ही जाने। अव्यक्त देही मुनिगण, सिद्ध तथा महर्षि इस अयोध्या क्षेत्र में जिस प्रकार का मोक्षलाभ करते हैं, मेरे विचार से वैसा मोक्ष कहीं प्राप्त ही नहीं होता। जो व्यक्ति इस अभीष्ट उत्तम अयोध्या की सेवा करता है, श्रीहरि उस व्यक्ति को अत्युत्तम योगैश्वर्य तथा अपनी सायुज्य मुक्ति प्रदान करते हैं।।८९-९२।।

ब्रह्मादेवर्षिभिःसार्द्धंश्रीश्चवायुर्दिवाकरः। देवराजस्तथाशक्रो ये चान्येऽपिदिवौकसः॥९३॥
उपासते महात्मनः सर्वत्र हरिमादरात्। अन्येऽपियोगिनः सिद्धा क्षेत्ररूपामहाव्रताः॥९४॥
अनन्यमनसो भूत्वा सर्वदोपासतेहरिम्। विषयासक्तचित्तोऽसि त्यक्तधर्म रतिर्नरः।
इह क्षेत्रे मृतः सोपि संसारी न पुनर्भवेत्॥९५॥
ये पुनर्निगमाधीनाःसत्रस्थाविजितेन्द्रियाः। व्रतिनश्चनिरारम्भाःसर्वे तेहरिभाविताः॥९६॥
देहभगं समापद्य धीमन्तः सङ्गवर्जिताः। गतास्ते च परं मोक्षं प्रसादात्सर्वदा हरेः॥९७॥
जन्मान्तरसहस्त्रेषु युञ्जन्योगी न चाऽऽप्नुयात्। तमिहैव परंमोक्षंमरणादपिगच्छति॥९८॥

देवर्षिगण के साथ कमलयोनि ब्रह्मा, लक्ष्मी, वायु, दिवाकर, देवराज इन्द्र तथा अन्य महात्मा स्वर्ग निवासी आत्मायें भी आदर के साथ इस पावन तीर्थ में श्रीहरि की आराधना करते हैं। अन्यान्य क्षेत्रवासी महाव्रती सिद्ध लोग भी (योगीगण) अनन्य चित्ततापूर्वक यहां सतत् श्रीहरि की उपासना करते हैं। यदि धर्मत्यागी, विषयासक्त संसारी लोग भी इस क्षेत्र में प्राण त्याग करते हैं, तब उनको पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता। यहां जो सभी इन्द्रियजित् निगमसेवी ऋषि आडम्बर रहित तथा व्रतशील होकर यज्ञ करते हैं, उनको हरि के साथ

एकात्मलाभ होता है। इसी प्रकार से सभी सङ्ग के त्यागी धीमान् मुनिगण भी जन्म लेकर हरिकृष्ण से इस क्षेत्र के अनुपम प्रभाव द्वारा परम मोक्षलाभ करते हैं। युक्तयोगीगण भी हजारों जन्मों के प्रयास द्वारा जिस मोक्ष की प्राप्ति नहीं कर पाते, यहां देहत्याग मात्र से वह मोक्ष प्राप्त हो जाता है!।।९३-९८।।

एतत्सङ्क्षेपतो वच्मि क्षेत्रस्य महिमाद्भुतम्। एतदेव परं स्थानमेतदेव परम्परदम्।
एतादृङ्नापरं स्थानं पुनरन्यत्र दृश्यते॥९९॥
यत्रगत्वाप्रयत्नेनयात्रापुण्याभिकाङ्क्षिभिः। कर्तव्याविधिवद्धीराः क्रमेणश्रद्धयान्वितैः॥१००॥
प्रथमेऽहनि कर्त्तव्य उपवासो यतात्मभिः। नियमेन ततः स्नानं दानञ्चैव स्वशक्तितः॥१०१॥
उपाबृत्तस्तु पापेभ्योयस्य वासोगुणैः सह। उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः॥१०२॥

हे द्विज! मैंने संक्षेप में इस अद्‌भुद् अयोध्या क्षेत्र का माहात्म्य वर्णन किया है। यही उत्तम क्षेत्र तथा परमपद भी है। अयोध्या के समान उत्तम क्षेत्र मैंने अन्य कहीं नहीं पाया! पुण्यकामी धीर व्यक्ति यहां आकर श्रद्धापूर्वक यथाविधि यात्रा करें। अब यात्राक्रम सुनो। यहां यतात्मा मनुष्य आकर पहले दिन नियमतः उपवासी रहे तथा स्नानोपरान्त यथाशक्ति दान करे। एवंविध पापों से निवृत्त होकर समस्त भोगों को त्यागे। गुणों को अपनाकर जो निवास किया जाता है, वही उपवास कहा गया है।।९९-१०२।।

उपवासं विधायाऽसौ चक्रतीर्थे नरः कृती।
उपवासदिनेस्नायाद्धद्याच्चैवस्वशक्तितः ॥१०३॥
विप्रं सम्पूज्य विधिवत्पश्येद्विष्णुहरिं विभुम्।
स्वर्गद्वारे नरः स्नात्वा विष्णुं सम्पूज्य यत्नतः॥१०४॥
क्षौरञ्च कारयेत्तत्र व्रतीधर्माभिधे ततः। पापमोचनके स्नानमृणमोचनके ततः॥१०५॥
स्नात्वा सहस्त्रधारायां शेषंसम्पूज्य यत्नतः। दृष्ट्वा चन्द्रहरिं देवं ततोर्धहरिंविभुम्॥१०६॥
ततश्चक्रहरिं दृष्ट्वा दद्याच्चैव स्वशक्तितः। ब्रह्मकुण्डे नरः स्नात्वा सर्वकामार्थसिद्धये।
महाविद्यासमीपे तु रात्रौ जागरणं चरेत्॥१०७॥
ततः प्रभाते विमले पुनरुत्थाय सद्व्रती। स्वर्द्वारे प्रयत्नेन विधिवत्स्नानमाचरेत्॥१०८॥
श्राद्धञ्च विधिवत्कृत्वा दत्त्वा चैव स्वशक्तितः।
विष्णुं सम्पूज्य विधिवद्विप्रानपि पुनः पुनः॥१०९॥
दम्पती च प्रयत्नेनपूज्यौवस्त्रादिभिस्तथा। श्रद्धया परया युक्तैर्दातव्याभूरिदक्षिणा॥११०॥
विप्रान्सम्पूज्य विधिवद्भुञ्जीत प्रयतोनरः॥१११॥

व्रती मानव उपवास करके उस दिन चक्रतीर्थ में स्नान तथा यथाविधान दान करे। तत्पश्चात् सविधि विप्र को भोजन कराने के उपरान्त प्रभु विष्णु का दर्शन करें। तदनन्तर व्रती मानव स्वर्गद्वार में स्नान तथा यत्नतः विष्णुपूजन करके धर्मनायक तीर्थ में क्षौरकर्म समापन करें। तदनन्तर पापमोचन, ऋणमोचन, सहस्त्रधारा तीर्थ में स्नान करके यत्नतः भगवान् शेष अनन्तदेव की पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर क्रमशः चन्द्रहरि, धर्महरि तथा

चक्रहरि देव का दर्शन करके यथाशक्ति दान करें। तत्पश्चात् मानव सर्वाभीष्ट सिद्धि हेतु ब्रह्मकुण्ड में स्नानोपरान्त महाविद्या के निकट जागरण करे। तत्पश्चात् वह साधुव्रतशील व्यक्ति विमल प्रातःकाल में स्वर्गद्वार में स्नान, सविधि पितृश्राद्ध तथा शक्ति के अनुसार दान करके विष्णु की सम्यक् पूजा सम्पन्न करके पुनः द्विजगण की पूजा करें। तदनन्तर यज्ञादि से श्रद्धापूर्वक एवं प्रयत्नपूर्वक द्विज दम्पति की पूजा करके उनको प्रचुर दक्षिणा देनी चाहिये। तत्पश्चात् अन्य द्विजों की भी सम्यक् पूजा सम्पन्न करने के अनन्तर वह व्रती भी स्वयं भोजन करे।।१०३-१११।।

अन्येद्युरपि चोत्थाय श्रद्धयापरयायुतः।
रुक्मिणीप्रभृतीन्यत्रपश्येत्तीर्थानिचक्रमात्।।११२।।
तत्र तत्र नरः स्नात्वा दत्त्वा चैव स्वशक्तितः।
विष्णुं सम्पूज्य यत्नेन मनोवाक्कायनिर्मलः।।११३।।
यात्रा समापयेत्सम्यङ्नियतात्माशुचिव्रतः। यत्रक्वापिमृतोधीरःपरंमोक्षमवाप्नुयात्।।११४।।

तदनन्तर अगले दिन शय्या से उठकर परम श्रद्धा के साथ ही रुक्मिणी प्रभृति देवी के क्रम से अन्य सभी तीर्थों का दर्शन, इन सब तीर्थों में स्नान, यथाशक्ति दान तथा यत्नतः विष्णु का पूजन करें। तदनन्तर मन-वाणी-काया को निर्मल करके शुचिव्रत मानव सम्यक्तः यात्रा समाहित करें। धीर मनुष्य इस तीर्थ में जहां कहीं भी मृत होकर अत्युत्तम गतिलाभ करता है।।११२-११४।।

अगस्त्य उवाच

वसिषोक्तमिति श्रुत्वाकृत्वाचैवयथाविधि। विभीषणपुरोगास्ते बभूवुर्निर्मलास्तदा।।११५।।
इति बहुलविधानैस्तीर्थयात्रां विधाय प्रचुरसुकृतपूर्णास्ते च सुग्रीवमुख्याः।।११६।।
गतमलिनसुदेहाः स्वर्गचर्याप्रयत्नादुपगुणितगुणौघास्ते बभूवुः समस्ताः।।११७।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डेऽयोध्यामाहात्म्ये रतिकुण्ड-महारत्नतीर्थदुर्भरमहाभरतीर्थमहाविद्यातीर्थ सिद्धपीठक्षीरेश्वरसीताकुण्डसुग्रीवतीर्थहनुमत्कुण्ड-विभीषणसरस्तीर्थायोध्यायात्राविधिक्रमवर्णनंनामाष्टमोऽध्यायः।।८।।

—※※※—

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—विभीषण आदि समस्त श्रीरामचन्द्र के अनुचरगण वसिष्ठ ऋषि से इस तीर्थ माहात्म्य को सुनने के अनन्तर इन सभी तीर्थों की यथाविधि सेवा करने के पश्चात् निर्मल अन्तःकरण हो गये। तब विभीषण आदि राक्षस एवं सुग्रीव आदि वानरगण ने विविध-विधान द्वारा तीर्थयात्रा सम्पन्न किया। वे दिव्यदेही होकर बहुगुणगुणित बिना यत्न से प्राप्त स्वर्गसुख के अधिकारी हो गये।।११५-११७।।

।।अष्टम अध्याय समाप्त।।

नवमोऽध्यायः

भैरवक्षेत्रवर्णन, गयाकूप, पिशाचमोचन, मानसतीर्थ, तमसा-नदी, माण्डव्य आश्रम, सीताकुण्ड, जयकुण्ड माहात्म्य

अगस्त्य उवाच

जटाकुण्डत आग्नेयदिग्दले संश्रितं महत्। गयाकूपमिति ख्यातं सर्वाभीष्टफलप्रदम्॥१॥
यत्रस्नात्वाचदत्त्वाचयथाशक्त्याजितेन्द्रियः। सर्वकाममवाप्नोतिश्राद्धंकृत्वाद्विजोत्तमः॥२॥
नरकस्थाश्च ये केचित्पितरश्च पितामहाः। विष्णुलोकेतु गच्छन्ति तस्मिञ्छ्राद्धे कृते तु वै॥३॥
तस्मिञ्छ्राद्धेकृते विप्रपितृणामनृणाभवेत्। शक्तिभिः पिण्डदानन्तुसयवैःपायसेनच॥४॥
कर्त्तव्यमृषिनिर्दिष्टं पिण्याकेनगुणेनवा। श्राद्धं तत्तीर्थके प्रोक्तं पितृणां तुष्टिकारकम्॥५॥

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—जटाकुण्ड की आग्नेय दिशा में गयाकुण्ड है। यह महातीर्थ प्रसिद्ध है तथा सभी अभीष्ट फल देने वाला है। जितेन्द्रिय द्विजगण इस गयाकुण्ड में स्नान, यथाशक्ति दान तथा पितरों के श्राद्ध द्वारा समस्त काम्यवस्तु की प्राप्ति करते हैं। इस तीर्थ में स्नान करने से नरकस्थ पितृ-पितामहगण इस श्राद्ध के प्रभाव से वे सभी विष्णुलोक गमन करते हैं। हे विप्र! गयाकुण्ड में श्राद्ध करने से मानव पितृऋण से मुक्त हो जाता है। यहां सत्तू से ही पिण्ड प्रदान करना चाहिये अथवा ऋषिनिर्दिष्ट पिण्याक तथा गुड़ से पितृगण का श्राद्ध करना चाहिये। मुनियों का कथन है कि इस तीर्थ में पितृगण को ऐसा ही श्राद्ध प्रसन्नतादायक है।।१-५।।

तत्रश्राद्धं प्रकर्त्तव्यं नरैः श्रद्धासमन्वितैः। तुष्यन्ति पितरस्तेषांतुष्टाःस्युःसर्वदेवताः॥६॥
तुष्टेषु पितृषु श्रीमाञ्जायते पुत्रवांस्तथा। श्राद्धेन पितरस्तुष्टाःप्रयच्छन्तिसुतान्बहून्॥७॥
श्रियञ्च विपुलान्भोगाञ्छ्राद्धकृद्भ्यो न संशयः।
तस्मादत्र विधानेन विधातव्यं प्रयत्नतः॥८॥
श्राद्धं श्रद्धायुतैः सम्यगभीष्टफलकाङ्क्षिभिः। गयाकूपे विशेषेण पितृणां दत्तमक्षयम्॥९॥
सोमवारेण संयुक्ता अमावास्या यदाभवेत्। तत्रानन्तफलं श्राद्धं पितृणांदत्तमक्षयम्॥१०॥

सभी लोग श्रद्धासमन्वित होकर इस तीर्थ में श्राद्ध करें। इससे उनके पितृगण तथा सुरगण प्रसन्न हो जाते हैं। पितृगण तथा देवगण की प्रसन्नता होने पर श्राद्धकारी को अनेक पुत्र, श्री तथा विपुल भोग प्रदान करते हैं। इसमें सन्देह नहीं है। अतएव अभीष्ट चाहने वाले श्रद्धावान् मनुष्य यत्नपूर्वक इस तीर्थ में सविधि श्राद्ध करें। विशेषतया गयाकुण्ड में श्राद्ध द्वारा जैसा फललाभ होता है, उसी प्रकार सोमवती अमावस्या के दिन यहां श्राद्ध द्वारा पितृगण के लिये-अनन्त फल प्राप्त होता है।।६-१०।।

अन्यदा सोमवारेण तत्र श्राद्धं विधानतः। पितृसन्तोषदं नित्यं तत्रदत्ताक्षयोभवेत्॥११॥
तत्र पूर्वदिशाभागे तीर्थं सर्वोत्तमोत्तमम्। पिशाचमोचनंनाम विद्यते च फलप्रदम्॥१२॥

तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च पिशाचोनैवजायते। तत्रस्नानंतथादानंश्राद्धञ्चैवविशेषतः।
कर्त्तव्यञ्च प्रयत्नेन नरैः श्रद्धासमन्वितैः॥१३॥
मार्गशीर्षे शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां विशेषतः। स्नानं तत्र प्रकर्तव्यं पिशाचत्वविमुक्तये॥१४॥
तत्सन्निधौपूर्वभागे मानसंनाम नामतः। तीर्थं पुण्यनिवासाग्र्यंस्नातव्यञ्चविशेषतः॥१५॥
तत्र स्नानेन दानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात्। नानाविधानि पापानि मेरुतुल्यानि वै पुनः।
तत्रस्नानात्क्षयं यान्ति नाऽत्र कार्या विचारणा॥१६॥

अन्य समय मात्र सोमवार के दिन यथाविधान श्राद्ध करने से वह पितरों के लिये अनन्त फलप्रद हो जाता है। इस गयाकुण्ड के पूर्व दिक्भाग में अनेक फलप्रद सर्वोत्तम पिशाचतीर्थ हैं। यहां स्नान, दान द्वारा मानव कदापि पिशाच नहीं होता। श्रद्धावान् मानव इस पिशाचमोचन पर यत्नतः स्नान, दान, श्राद्ध करे। विशेषतः पिशाचमुक्ति के लिये मानव को यहां मार्गशीर्षमास की शुक्लाचतुर्दशी तिथि के दिन अवश्य ही स्नान करना चाहिये। पिशाचमोचन के सन्निधान में पूर्वदिक् में मानस नामक तीर्थ है। यह मानस तीर्थ पुण्य स्थलों में श्रेष्ठ है। यहां विशेषतः स्नान करना चाहिये। इस मानस तीर्थ में स्नान तथा दान करने से निखिल काम्य का लाभ होता है। मेरु के समान नाना प्रकार के पापी मानव भी इस तीर्थ में स्नान करने से पापमुक्त होते हैं। इसमें संशय नहीं है।।११-१६।।

यत्किञ्चिद्विद्यतेपापंमानसंकायिकं तथा। वाचिकञ्चतथापापंस्नानतोविलयम्व्रजेत्॥१७॥
प्रौष्ठपद्यांसदाकार्व्यापौर्णमास्यांविशेषतः यात्रातस्यनृभिर्विप्रपुण्यवद्भिःक्रियापरैः॥१८॥
तस्माद्दक्षिणदिग्भागे वर्त्तते सुकृतैकभूः। तमसानाम तटिनी महापातकनाशिनी॥१९॥
यत्र स्नानं तथा दानं सर्वपापहरं सदा। यस्यास्तटेतथा रम्ये सर्वदा फलदायके॥२०॥

किम्बहुना, कायिक, वाचिक तथा मानसिक जो कोई पाप क्यों न हों, मानसतीर्थ स्नान द्वारा वह समस्त विलीन होता है। हे विप्र! पुण्यात्मा क्रियाकुशल व्यक्ति भाद्री पूर्णिमा के दिन सतत् मानसतीर्थ की यात्रा करे। मानस के दक्षिण की ओर सुकृती लोगों की एकमात्र क्रीड़ा भूमि है। वहां तमसा नामक महा पापनाशक नदी भी है। यहां स्नान तथा दान सर्वपापहरण करने वाला है। इसका तट सदैव रम्य एवं सर्वफलप्रद है।।१७-२०।।

नानाविधानि स्थानानि मुनीनां भावितात्मनाम्।
माण्डव्यस्य मुने! स्थानं वर्त्तते पापनाशनम्॥२१॥
यस्यास्तीरे मुनिश्रेष्ठ! सर्वत्र सुमनोहरम्। तस्याऽऽश्रमपदं रम्यं नानावृक्षमनोहरम्॥२२॥

भावितात्मा मुनिगण इसके विस्तृत तट देश पर सदा निवास करते रहते हैं। हे ऋषि! इस नदी के तट पर मुनि माण्डव्य का पापनाशक परम आश्रम स्थित है। इस नदी की तटभूमि का सभी स्थान मनोहारी है। वहां नाना प्रकार के मनोरम वृक्ष स्थित हैं।।२१-२२।।

यस्मात्स्थानात्समुद्भूता तमसा सुतरङ्गिणी। तद्वनं पुण्यमधिकं पावनं पदमुत्तमम्॥२३॥
यस्य दर्शनतो नृणां सर्वपापक्षयो भवेत्॥२४॥

प्रफुल्लनानाविधगुल्मशोभितं लताप्रतानावनतं मनोहरम्।
विरूढपुष्पैः परितः प्रियङ्गुभिः सुपुष्पितैः कण्टकितैश्च केतकैः॥२५॥
तमालगुल्मैर्निचितं सुगन्धिभिः सकर्णिकारैर्बकुलैश्च सर्वतः।
अशोकपुन्नागवरैः सुपुष्पितैर्द्विरेफमालाकुलपुष्पसञ्चयैः॥२६॥
क्वचित्प्रफुल्लाम्बुजरेणुरूषितैर्विहङ्गमैश्चारुफलप्रचारिभिः ।
विनादितं सारसमुत्कुलादिभिः प्रमत्तदात्यूहकुलैश्चवल्गुभिः॥२७॥

यह सुन्दर तरंगों वाली तमसा नदी माण्डव्य ऋषि के इसी आश्रमपद से निकली है। उत्तम माण्डव्यवन अत्यन्त पवित्र हैं। मनुष्य इस माण्डव्यवन का दर्शन पाकर सभी कलुषरहित हो जाते हैं। अहो! मुनिप्रवर माण्डव्य के आश्रम की क्या अपूर्व शोभा है! आश्रम की वनभूमि नाना प्रकार के प्रफुल्लित गुल्मों द्वारा (झाड़ियों द्वारा) शोभित हैं। लताप्रतान फल-पुष्प भार से अवनत होने के कारण मनोहररूप धारण करते हैं। इस वनभूमि के चतुर्दिक् कण्टकाकीर्ण केतकी तथा प्रियङ्गु पुष्पतरुओं में पुष्प उग रहे हैं। सर्वत्र सुगन्धि गुल्म से वेष्टित तमाल-कर्णिका से समाकीर्ण वकुल तरुमूल, सुपुष्पित पुन्नाग तथा अशोक समूह शोभित है। सभी पुष्प भ्रमर समूह से समाकुल होकर स्थित हैं। ये भ्रमर वहां पुष्पों के मधु का पान कर रहे हैं। यह स्थान कहीं पर पद्मरेणु द्वारा भूषित है, कहीं पक्षीगण रम्य फलों पर विचरणशील हैं। कहीं पर सारस, मुत्कुल तथा प्रमत्त दात्यूहगण का मनोरम निनाद श्रुतिगोचर हो रहा है।।२३-२७।।

क्वचिच्च चक्राह्वरवोपनादितं क्वचिच्च कादम्बकदम्बकैर्युतम्।
क्वचिच्च कारण्डवनादनादितं क्वचिच्च मत्तालिकुलाकुलीकृतम्॥२८॥
मदाकुलाभिर्भ्रमरीभराराान्निषेवितं चारुसुगन्धिपुष्पवत्।
क्वचिच्च पुष्पैः सहकारवृक्षैर्लतोपगूढैस्तिलकद्रुमैश्च॥२९॥
प्रहृष्टनानाविधपक्षिसेवितं प्रमत्तहारीतकुलोपनादितम्।
समन्ततः सुन्दरदर्शनीयतां समुद्वहत्तद्वनमुल्लसन्महत्॥३०॥
निबिडनिवुलनीलं नीलकण्ठाभिरामं मदमुदितविहङ्गीवृन्दनादाभिरामम्।
कुसुमिततरुशाखालीनमत्तद्विरेफं नवकिसलयशोभाशोभितंसत्फलाढ्यम्॥३१॥
इत्यादिबहुशोभाढ्यं सर्वदिक्षु मनोहरम्। यत्र माण्डव्यमुनिनातपस्तप्तं महत्किल।
यत्प्रभावादभूत्तीर्थं पावनं तत्सदा महत्॥३२॥

कहीं पर चक्रवाकों का झुण्ड निनाद कर रहा है, कहीं कादम्बक् कदम्ब पर शोभा पा रहे हैं। कहीं का स्थान कारण्डकगण के नाद से निनादित है। कहीं मत्त भ्रमरों से स्थान आकुलित है। कहीं मनोज्ञ गन्धयुक्त पुष्प समन्वित आश्रम का सभी स्थान-मद से आकुल भ्रमरों के निनाद से निनादित हैं। कहीं कुसुमित लता जाल रूपी तिलक से सजी तरु पंक्ति विराजित है। वहां प्रमत्त-हारीत आदि नाना पक्षी इन सभी वृक्षशाखा पर बैठकर निनाद कर रहे हैं। कहीं नील वेतस वन पर नीलकण्ठ आदि पक्षीगण बैठकर मनोभिराम रव कर रहे हैं। मद से मुदित नयना मादा पक्षीगण इस विहंग नाद की प्रतिध्वनि कर रहे हैं। नयी-नयी किसलयों से कुसुमित तरुशाखा में

सभी भ्रमरसमूह लीन होकर वृक्षों की मनोरम शोभा का वर्द्धन कर रहे हैं। किम्बहुना, आश्रमपद के सभी स्थान मानो एक अनिर्वचनीय सौन्दर्य की लीलाभूमि हो गयी है। मुनि माण्डव्य इस प्रकार से अनेक शोभा से समृद्ध सर्वत्र मनोरम आश्रम में रहकर सुमहान् तपस्या करते हैं। उनके तपः प्रभाव से यह तीर्थ मनोरम हो उठा है। उनके ही तप के कारण यह तीर्थ परमपावन भी है।।२८-३२।।

तत्पूर्वं गौतमस्यर्षेराश्रमं पावनं महत्। तत्पूर्वं च्यवनस्यर्षेः पराशरमुनेरिदम्!।
प्रथमं ते मुनिश्रेष्ठ! पितुः किल तपोनिधेः।।३३।।
नानाविधानि तीर्थानि चाश्रमाश्चैवसर्वशः। वर्तन्तेतापसानाञ्चयस्यास्यीरेसमन्ततः।।३४।।
तमसानाम सा ज्ञेया वर्तते तटिनी शुभा। यज्ञयूपान्समुत्खाय शोभिताबहुशोऽभितः।।३५।।
तत्र स्नानेन दानेनश्राद्धेनचविशेषतः। सर्वकामार्थसिद्धिःस्यान्नाऽत्रकार्याविचारणा।।३६।।
मार्गशीर्षे शुक्लपक्षे पञ्चदश्यां विशेषतः। स्नानं तस्य फलप्राप्तिदायकं सर्वदा नृणाम्।।३७।।
तस्मादत्र प्रकर्तव्यं स्नानं निर्मलमानसैः। प्रयत्नतो मुनिश्रेष्ठ! सर्वकामार्थसिद्धिदम्।।३८।।

इस माण्डव्य तीर्थ के पूर्व की ओर महर्षि गौतम का महापवित्र आश्रम तथा उसके पूर्व में ऋषि च्यवन का आश्रम विद्यमान है। हे मुनिसत्तम! आपके पिता तपोधन में पहले इसी आश्रम की प्रतिष्ठा किया था। इस तमसातट के सभी ओर नानाविध तीर्थ तथा अनेक तापसगण का आश्रय विद्यमान है। शुभावह विख्याता तमसातटिनी के तट पर सर्वत्र ही अनेक यज्ञयूप खुदे होने के कारण उसकी अपूर्व शोभा हो रही है। इस तमसातट पर स्नान-दान-विशेषतः श्राद्ध करने से निःसंदिग्ध रूप से सर्वार्थसिद्ध करते हैं, इसमें संदेह नहीं है। विशेषतः मार्गशीर्षमास में पूर्णिमा तिथि के दिन तमसा में स्नान करना मनुष्यों के लिये अत्यधिक फलदायक है। हे मुनिप्रवर! सर्वाभीष्ट सिद्धि के लिये निर्मल मन वाले मनुष्य यत्नतः मार्गशीर्ष पूर्णिमा तिथि में यहां स्नान करें।।३३-३८।।

अतः परं प्रवक्ष्यामि तमसापरमंशुभम्। सीताकुण्डमितिख्यातंश्रीदुग्धेश्वरसन्निधौ।।३९।।
भाद्रेशुक्लचतुर्थ्यांतुतस्ययात्राशुभावहा। सर्वकामार्थसिद्ध्यर्थं पूज्योविघ्नेश्वरस्तथा।
तस्य स्मरणमात्रेण सर्वविघ्नविनाशनम्।।४०।।
तस्माद्दक्षिणदिग्भागे भैरवो नाम नामतः। यं दृष्ट्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यतेनात्रसंशयः।।४१।।
रक्षितो वासुदेवेन क्षेत्ररक्षार्थमादरात्। तस्यपूजा विधातव्या प्रयत्नेन यथाविधि।।
मनोऽभीष्टफलप्राप्तिर्भैरवस्य सदाऽऽदरात्।।४२।।
मार्गशीर्षस्यकृष्णायामष्टम्यांतस्यनिर्मिता। यात्रासाम्वत्सरीतत्रसर्वकामार्थसिद्धये।।४३।।

अब मैं दुग्धेश्वर के सन्निधान में तमसा के एक अन्य शुभप्रद परम तीर्थ का वर्णन करता हूं। इसका नाम है विख्यात सीताकुण्ड। भाद्रमासीय शुक्लचतुर्दशी के दिन इस सीताकुण्ड की यात्रा शुभप्रदा है। इस तीर्थ में सर्वकामनासिद्धि हेतु विघ्नेश्वर पूजा करनी चाहिये। इन विष्णुदेव के स्मरण मात्र से सभी पापों का नाश हो जाता है। इस सीताकुण्ड के दक्षिण की ओर भैरव नामक स्वनाम धन्य तीर्थ है। इसके दर्शन से व्यक्ति सर्वकलुष रहित हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं है। वासुदेव ही क्षेत्र की सादर यत्नपूर्वक रक्षा करते हैं; इसलिये सदा इनकी

सविधि पूजा करनी चाहिये। इन भैरव की सादर सतत् पूजा द्वारा सभी अभीष्ट सिद्ध हो जाता है। मार्गशीर्ष मास की कृष्णाष्टमी के दिन भैरवतीर्थ की सावंत्सरी यात्रा निर्दिष्ट है। यह सर्वकाम सिद्धिप्रदा है।।३९-४३।।

पशुपहारसम्भृति कर्त्तव्यं पूजनं जनैः।। सर्वकामफलप्राप्तिर्जायते नाऽत्र संशयः।।४४।।
निर्विघ्नं तीर्थवसतिर्भैरवस्य प्रसादतः। जायते तेन कर्तव्या पूजा तस्य प्रयत्नतः।।४५।।
एतस्मिन्नुत्तरे भागे रम्यं भरतकुण्डकम्। यत्र स्नात्वा नरः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः।।४६।।
तत्र स्नानं तथादानं सर्वमक्षयतां व्रजेत्। अन्नं बहुविधं देयंवासांसिविविधान्यपि।।४७।।
यत्नतो देवताः पूज्या वस्त्रादिभिरलङ्कृतैः। नन्दिग्रामे वसन्पूर्वं भरतोरघुवंशजः।।४८।।
रामचन्द्रं हृदि ध्यायन्निर्मलात्मा जितेन्द्रियः।
ततः स्थित्वा प्रजाः सर्वा ररक्ष क्षितिवल्लभः।।४९।।
तत्र चक्रे महत्कुण्डं भरतोनाम भूपतिः। राममूर्तिं च संस्थाप्यचचारविजितेन्द्रियः।।५०।।

मनुष्य को पशुपहार समन्वित द्रव्यों द्वारा भैरव की पूजा करनी चाहिये। ऐसा करने से भैरव की कृपा से सर्व कामनायें फललाभ करती हैं। वह व्यक्ति विघ्नरहित होकर भैरवतीर्थ में निवास करने में सामर्थ्यवान् हो जाता है। इसलिये प्रयत्नतः भैरवपूजन करें। भैरवतीर्थ के उत्तरभाग में भरतकुण्ड है। मनुष्य निःसंदिग्धरूपेण यहां स्नान द्वारा पापरहित होता है। यहां किया स्नान-दानादि अक्षय हो जाता है। यहां अनेक अन्न तथा विविध वस्त्रदान तथा वस्त्रालंकार द्वारा देवगण की अर्चना करनी चाहिये। पूर्वकाल में निर्मलात्मा जितेन्द्रिय रघुवंशोत्पन्न भरत ने राम का हृदय में ध्यान करते हुये नन्दीग्राम में निवास किया था। वे वहां रहकर समस्त प्रजा की रक्षा करके पृथिवीमण्डल में प्रिय हो गये थे। उस समय उन जितेन्द्रिय राजा भूपति ने इस महाकुण्ड का निर्माण करके वहां राममूर्त्ति स्थापित किया था। वे सदा इस कुण्ड के पास विचरण करते रहते थे।।४४-५०।।

तत्कुण्डे सुमहत्पुण्यं नानापुण्यसमन्वितम्। कुमुदोत्पलकह्लारपुण्डरीकसमन्वितम्।।५१।।
हंससारसचक्राह्वविहङ्गमविराजितम्। उद्यानपादपच्छायासच्छायमयलं सदा।।५२।।
तत्र स्नानं महापुण्यं प्रमोदानन्दनिर्मलम्। तत्र स्नानं तथा श्राद्धं पितृनुद्दिश्य कुर्वतः।
पितरस्तस्य तुष्यन्ति तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः।।५३।।
स्वर्णं चाऽन्नं विधानेन दातव्यं च द्विजन्मने। श्रद्धापूर्वकमेतत्तु कर्तव्यं प्रयतैर्नरैः।
तत्पश्चिमदिशाभागे जटाकुण्डमनुत्तमम्। यत्र रामादिभिः सर्वैर्जटाःपरिहृता निजाः।।५४।।

यह भरतकुण्ड महापवित्र तथा पुष्पयुक्त है। कुमुद-उत्पल-कल्हार तथा पुण्डरीक पुष्प से यह कुण्ड सुशोभित होता रहता है। हंस, सारस, चक्रवाक आदि पक्षी कुण्ड के पास विचरते रहते हैं तथा इस निर्मल कुण्ड की शोभावृद्धि उद्यानस्थ वृक्षों द्वारा होती है, जो अनुपम छाया प्रदान करते हैं। भरतकुण्ड में स्नान द्वारा व्यक्ति निर्मल हो जाता है। इस स्नान द्वारा प्रमोद तथा आनन्दवृद्धि होती है। जो मानव भरतकुण्ड में स्नान करके पितरों के लिये श्राद्ध करता है, उसके प्रति पितृगण तथा देवगण सन्तुष्ट हो जाते हैं। मनुष्यों को चाहिये कि वे भरततीर्थ में यत्न तथा श्रद्धा के साथ द्विजगण को सविधि स्वर्ण तथा अन्नदान देना चाहिये।।५१-५४।।

जटाकुण्डमिति ख्यातं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्।
यत्र स्नानेन दानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥५५॥
पूर्वकुण्डेषु सम्पूज्योभरतःश्रीसमन्वितः। जटाकुण्डेषुसम्पूज्यौससीतौरामलक्ष्मणौ॥५६॥
चैत्रकृष्णचतुर्दश्यां यात्रा साम्वत्सरी भवेत्॥५७॥

उसके पश्चिम भाग में अत्युत्तम जटाकुण्ड है। यहां राम आदि ने अपनी-अपनी जटाओं का त्याग किया था। इसीलिये यह सर्वतीर्थोत्तम तीर्थ जटाकुण्ड कहा जाता है। यहां जटाकुण्ड में स्नान तथा दान करने से समस्त कामनाओं का लाभ होता है। भरत कुण्ड में स्नान करके जटाकुण्ड में सीता-राम-लक्ष्मण की पूजा करनी चाहिये। चैत्र कृष्णाचतुर्दशी के दिन इन कुण्डद्वय की सांवत्सरी यात्रा होता है।।५५-५७।।

इति परमविधानैः पूजयेद्रामसीते तदनु भरतकुण्डे लक्ष्मणं च प्रपूज्य॥५८॥
विधिवदमृतकुण्डे द्वन्द्वसम्मज्जनेन वसति सुकृतिमूर्तिर्वैष्णवे तत्रलोके॥५९॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डेऽयोध्यामाहात्म्ये गयाकूप-पिशाचमोचनमानसतीर्थतमसानदीमाण्डव्याद्याश्रमसीताकुण्डदुग्धेश्वरभैरवभरतकुण्ड-जटाकुण्डमाहात्म्यवर्णनंनामनवमोऽध्यायः।।९।।
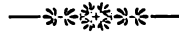
हे द्विज! सुकृति सम्पन्न पुरुष इन परम विधान द्वारा पहले राम तथा सीता की पूजा करने के अनन्तर भरतकुण्ड में लक्ष्मण की पूजा करें। तदनन्तर यथाविधि सस्त्रीक स्नान करके वह पुण्यमूर्त्ति मानव विष्णुलोक में निवास करता है।।५८।।

।।नवम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

दशमोऽध्यायः

अयोध्या यात्रा विधिक्रम वर्णन, यात्राफलश्रुति

अगस्त्य उवाच

निराहारो नरो भूत्वा क्षीराहारोऽपि वा पुनः। अजितं पूजयेद्विप्र! तस्य सिद्धिः करे स्थिता।
महोत्सवस्तु कर्तव्योगीतवादित्रसंयुतः। एवं यःकुरुतेधीमान्सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥१॥
एतस्मादुत्तरे विद्वन्वीरस्य शुभसूचकम्। स्थानं मत्तगजेन्द्रस्य वर्तते नियतव्रत!॥२॥
तदग्रे सरसिस्नात्वावसेत्तत्रसुनिश्चितम्। पूर्णांसिद्धिमवाप्नोतियामवाप्यनशोचति॥३॥

अयोध्यारक्षको वीरःसर्वकामार्थसिद्धिदः। नवरात्रिषुपञ्चम्यांयात्रासाम्वत्सरीभवेत्।।४।।
गन्धपुष्पधूपादिनैवेद्यादिविधानतः। पूजनीयः प्रयत्नेन सर्वकामार्थसिद्धिदः।।५।।
यंयं काममिहेच्छेत तं तं काममवाप्नुयात्।।६।।

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—हे द्विज! जो मनुष्य निराहारी अथवा दुग्धाहारी रहकर अजित की पूजा करते हैं, सिद्धि उनके करस्थ है। हे विद्वान्! धीमान् मानव वहां गीत-वाद्य संयुक्त महोत्सव का आयोजन करें। ऐसा करने से उसकी समस्त कामना सफल हो जाती है। हे नियतव्रत! जटाकुण्ड भरत कुण्ड के उत्तर में मत्त गजेन्द्र वीर का शुभसूचक स्थान विद्यमान है। इस स्थान के समक्ष एक सरोवर है। इस सरोवर में स्थिरचित्त से स्नान करके वहां रहे। इस स्थान में निवास करके मानव को पूर्णसिद्धि का लाभ हो जाता है। इस प्रकार पूर्णसिद्धि का लाभ होने पर उसे शोक नहीं होता। यह अयोध्या रक्षक वीर सर्वकामार्थसिद्धिप्रद हैं। नवरात्र की पञ्चमी तिथि के दिन इस तीर्थ की सांवत्सरी यात्रा की जाती है। गंध-पुष्प-धूप तथा नैवेद्यादि से यथाविधि यत्नतः सर्वार्थसिद्धिप्रद इन वीर की पूजा करनी चाहिये। मानव इन वीर की पूजा करके जो-जो कामना करता है, उसे वह सब प्राप्त होता है।।१-६।।

एतस्माद्दक्षिणे भागे सुरसानाम राक्षसी। विष्णुभक्ता सदाविप्रवर्ततेसिद्धिदायिका।।७।।
तां सम्पूज्य नरो भक्त्या सर्वान्कामानवाप्नुयात्।।८।।
लङ्कास्थानादिहानीतारामेणोत्कृष्टकर्मणा। अयोध्यायांस्थापितासारक्षार्थंनियतव्रतैः।।९।।
सम्पूज्यविधिवत्तस्यादर्शनंकार्यमादरात्। सर्वकामार्थसिद्ध्यर्थमुत्सवोऽपिशुभप्रदः।
कर्त्तव्यः सुप्रयत्नेन गीतवादित्रसंयुतैः।।१०।।
नवरात्रे तृतीयायां यात्रा साम्वत्सरीभवेत्। सर्वदा सुखसन्तानसिद्धये परमार्थदा।
नानासङ्गीतवादित्रनृत्योत्सवमनोहरा ।।११।।
एवं कृते न सन्देहः सर्वदा रक्षितो भवेत्।।१२।।
एतत्पश्चिमदिग्भागे वर्तते परमो मुने!। पिण्डारक इति ख्यातो वीरःपरमपौरुषः।
पूजनीयः प्रयत्नेन गन्धपुष्पाक्षतादिभिः।।१३।।

हे विप्र! इस अयोध्या रक्षक वीर के दक्षिण भाग में सिद्धिप्रदा विष्णुभक्ता सुरसानाम्नी राक्षसी सतत् विराजिता है। मानव इस सुरसा राक्षसी की भक्तियुक्त पूजा करके समस्त कामना प्राप्त करते हैं। अक्लिष्ट कर्मा राम ने लंका से सुरसा को लाकर अयोध्या रक्षार्थ स्थापित किया। नियतव्रत मानव सुरसा की यथाविधि पूजा करके सादर उसका दर्शन करते हैं। सर्वकामना सिद्धि हेतु सुरसा का शुभद उत्सव करें। इस उत्सव में यत्नतः गीत-वाद्यादि का अनुष्ठान करना चाहिये। नवरात्र में तृतीया के दिन इस तीर्थ की सांवत्सरी यात्रा की जाये। सतत् सुख तथा सन्तान की सिद्धि हेतु सुरसा के स्थान की यात्रा करें। इस सुरसा यात्रा में नाना संगीत, वाद्य तथा नृत्योत्सव करना चाहिये। इस नृत्योत्सवादि द्वारा मनोहरा सुरसा परमार्थप्रदा हो जाती हैं। मानव इस प्रकार से सर्वदा रक्षित हो जाता है। इसमें संशय नहीं है। हे मुनिवर! सुरसा के पश्चिमदिक् भाग में उत्तम पौरुषयुक्त परमवीर विख्यात पिण्डारक स्थित हैं। इनकी पूजा गन्ध-पुष्प-अक्षतादि से करें।।७-१३।।

यस्य पूजावशान्नृणां सिद्धयः करसंश्रिताः। तस्य पूजाविधानेन कर्तव्यं पूजनंनरैः॥१४॥
सरयूसलिले स्नात्वा पिण्डारकञ्चपूजयेत्। पापिनांमोहकर्त्तारंमतिदं कृतिनांसदा॥१५॥
तस्य यात्राविधातव्यासपुष्यानवरात्रिषु। तत्पश्चिमदिशाभागे विघ्नेशंकिलपूजयेत्॥१६॥
यस्य दर्शनतो नृणां विघ्नलेशोन विद्यते। तस्माद्विघ्नेश्वरः पूज्यः सर्वकामफलप्रदः॥१७॥
तस्मात्स्थानत ऐशाने रामजन्मप्रवर्त्तते। जन्मस्थानमिदम्प्रोक्तंमोक्षादिफलसाधनम्॥१८॥
विघ्नेश्वरात्पूर्वभागेवासिष्ठादुत्तरेतथा। लोमशात्पश्चिमेभागेजन्मस्थानंततःस्मृतम्॥१९॥
यद्दृष्ट्वा च मनुष्यस्य गर्ववासंजयोभवेत्। विना दानेन तपसा विरा तीर्थैर्विना मखैः॥२०॥
नवमीदिवसे प्राप्ते व्रतधारी हि मानवः। स्नानदानप्रभावेण मुच्यते जन्मबन्धनात्॥२१॥
कपिलागोसहस्राणि यो ददातिदिनेदिने। तत्फलं समवाप्नोति जन्मभूमेःप्रदर्शनात्॥२२॥
आश्रमे वसतां पुंसां तापसानाञ्च यत्फलम्। राजसूयसहस्राणि प्रतिवर्षाग्निहोत्रतः॥२३॥
नियमस्थं नरं दृष्ट्वा जन्मस्थाने विशेषतः। मातापित्रोगुरूणाञ्चभक्तिमुद्वहतांसताम्॥२४॥
तत्फलं समवाप्नोति जन्मभूमेः प्रदर्शनात्॥२५॥

पिण्डारक की पूजा द्वारा सिद्धियां करस्थ होती हैं। इसलिये मानव यत्नतः पिण्डारक की यथाविधि पूजा करे। पहले सरयूजल में यथाविधि पूजा करनी चाहिये। सर्वप्रथम सरयूजल में स्नान करके पापीगण को मोहप्रदान करने वाले तथा सुकृति जन को मतिप्रद पिण्डारक की पूजा करे। नवरात्र में पुष्ययुक्त दिवस के दिन पुण्डरीक की यात्रा करनी चाहिये। उसके पश्चिम भाग में विघ्नेश की पूजा करनी चाहिये। उनके दर्शन से मनुष्य को विघ्न का लेश भी नहीं रह जाता। इसलिये सर्वकामफलप्रद विघ्नेश की पूजा करें। उनके ईशानकोण में रामजन्म हुआ था। इसे जन्मस्थान कहते हैं, जो मोक्ष आदि फल देता है। विघ्नेश के पूर्वभाग में तथा वासिष्ठ के उत्तर में तथा लोमश के पश्चिम में जन्मस्थान है। यहां दर्शन करने से मनुष्य पुनः गर्भ में नहीं आता। व्रतधारी मानव नवमी के दिन इस तीर्थ में स्नान तथा दान करके उस पुण्य प्रभाव से बिना दान, तप, तीर्थसेवा तथा यज्ञ किये ही जन्मबन्धन से रहित हो जाता है। जन्मभूमि के दर्शनमात्र से नित्यप्रति हजारों हजार कपिला गोदान का फललाभ होता है। आश्रम में रहकर तप करने वाले ऋषिगण का जो पुण्य है, हजारों राजसूय यज्ञ अनुष्ठान का जो फल है, प्रतिवर्ष अग्निहोत्र करने का जो फल है, वह मनुष्य नियमस्थ होकर इस जन्मभूमि के दर्शन से प्राप्त कर लेता है। साधु चरित्र व्यक्ति माता-पिता-गुरुगण के प्रति भक्ति दिखलाने से जो फललाभ करता है, जन्मभूमि के दर्शन मात्र से वही फल मिल जाता है।।१४-२५।।

अथ सरयूवर्णनम्

पितॄणामक्षया तृप्तिर्गयाश्राद्धाधिकं फलम्॥२६॥
मन्वन्तरसहस्रैस्तु काशीवासेषुयत्फलम्। तत्फलं समवाप्नोति सरयूदर्शने कृते॥२७॥
गयाश्राद्धञ्च ये कृत्वा पुरुषोत्तमदर्शनम्। कुर्वन्ति तत्फलं प्रोक्तं कलौदाशरथींपुरीम्॥२८॥
मथुरायां कल्पमेकं वसते मानवो यदि। तत्फलं समवाप्नोति सरयूदर्शने कृते॥२९॥

पुष्करेषु प्रयागेषु माघे वा कार्त्तिके तथा। तत्फलं समवाप्नोति सरयूदर्शने कृते॥३०॥
कल्पकोटिसहस्त्राणि ह्यवन्तीवासतो हि यत्। तत्फलं समवाप्नोति सरयूदर्शने कृते॥३१॥
षष्टिवर्षसहस्त्राणि भागीरथ्यवगाहजम्। तत्फलं निमिषार्द्धेन कलौ दाशरथीं पुरीम्॥३२॥

अब सरयू वर्णन करते हैं। सरयू दर्शन से पितरों को अक्षय तृप्ति होती है। गया श्राद्ध से भी सरयू दर्शन का अधिक फल है। सहस्त्रों मन्वन्तर में काशी निवास का जो फल है, सरयू दर्शन से वही फल लाभ होता है। जो कलिकाल में दशरथतनय राम की अयोध्यापुरी का दर्शन करते हैं, उनको गयाश्राद्ध तथा पुरुषोत्तम दर्शन इतना फल लाभ होता है। जो मनुष्य सरयू दर्शन करते हैं, उनको एक कल्पपर्यन्त मथुरा निवास का फल मिलता है। कार्त्तिक मास में पुष्कर अथवा प्रयाग वास का जो पुण्य है मानव को एकमात्र सरयू दर्शन से वही फल लाभ होता है। सरयू दर्शन द्वारा सहस्त्रकोटि कल्पपर्यन्त अवन्ती नगरी में रहने के समान फल होता है। ६० हजार वर्ष तक जाह्नवी जल में स्नान का जो फल है, वही फल दाशरथी पुरी अयोध्या का दर्शन करने वाले को आधे क्षण में मिल जाता है।।२६-३२।।

निमिषं निमिषार्द्धं वा प्राणिनां रामचिन्तनम्। संसारकारणाज्ञाननाशकंजायतेध्रुवम्॥३३॥

यत्र कुत्र स्थितो ह्यस्तु ह्ययोध्यां मनसा स्मरेत्।
न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पान्तरशतैरपि॥३४॥

जलरूपेण ब्रह्मैव सरयूर्मोक्षदा सदा। नैवाऽत्र कर्मणोभोगो रामरूपो भवेन्नरः॥३५॥
पशुपक्षिमृगाश्चैव ये चान्ये पापयोनयः। तेऽपि मुक्ता दिवं यान्ति श्रीरामवचनंयथा॥३६॥
इत्युक्त्वा विरते तस्मिन्मुनौ कलशजन्मनि। कृष्णद्वैपायनव्यासःपुनरूचे तपोधनः॥३७॥

दुर्लभा सर्वजन्तूनां कथा विस्तरतः क्रमात्।
यात्राक्रमोऽपिच मया श्रुत आगच्छतां नृणाम्॥३८॥

इदानींश्रोतुमिच्छामिक्षेत्रस्थानंयथाविधि। यात्राक्रमंमुनिश्रेष्ठसम्यक्त्वत्तस्तपोधन॥३९॥
फलम्ब्रूहि क्रमेणैवविस्तरात्पृच्छतो मम। यद्यस्तिमयिते विद्वन्कृपाकारुणिकोत्तम॥४०॥
यथा श्रुत्वा क्रमेणैव यात्रां विश्वविदाम्वर!। कंरोमि त्वत्प्रसादेन तथाकुरुयतव्रत!॥४१॥

प्राणीगण एक निमेष अथवा आधा निमेष राम चिन्तन करके संसार के कारण अज्ञान का नाश कर लेते हैं। इसमें संशय नहीं है। मानव जहां भी रहे, यदि वह मन ही मन अयोध्या का स्मरण करता है—उस स्थिति में सैकड़ों कल्प में भी उसका पुनर्जन्म नहीं होता। ब्रह्मा सरयूतट पर विराजित रहकर जीवगण को सतत् मुक्ति देते हैं। यहां कर्म का भोग नहीं है। यहां जीवन समाप्त होने पर रामरूप प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त पशु, पक्षी, मृग तथा अन्य पापीगण भी मुक्त होकर स्वर्गगमन करते हैं। यह राम की आज्ञा है। तत्पश्चात् कुम्भज मुनि अगस्त्य यह सब कहकर विरत हो गये। तब कृष्णद्वैपायन व्यास ने पुनः कहा—"हे तपोधन! मैंने आपसे समस्त प्राणीगण के लिये जो दुर्लभ है, ऐसी कथा विस्तार से सुनी। क्रमशः अयोध्यायात्राक्रम भी आपने कहा। हे मुनिप्रवर! सम्प्रति आपसे यथाविधि यात्राक्रम के अनुसार क्षेत्रस्थान सुनना चाहता हूं। हे विद्वान्! सम्प्रति यह जानना है। यदि मेरे ऊपर आपकी कृपा है, तब हे कारुणिकों में श्रेष्ठ! आप क्षेत्र के फल का भी वर्णन करिये।

हे यतव्रत, विश्वविदों में श्रेष्ठ! आपके मुख से यह सब सुनकर आपकी कृपा से मैं अयोध्यायात्रा सम्पन्न कर सकूं, ऐसा बतायें।।३३-४१।।

अगस्त्य उवाच

श्रृणु वक्ष्यामितत्त्वेनयात्राक्रममथादितः। अयोध्यां सप्ततीर्थानां यथावदनुर्पूशः॥४२॥
मनोवाक्कायशुद्धेन निर्दोषेणान्तररात्मना। मानसेषु सुतीर्थेषु स्नात्वाकिल जितेन्द्रियः।
यः करोति विधिं सम्यक्स तीर्थफलमश्नुते॥४३॥

व्यास उवाच

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—अब मैं अयोध्या के सप्ततीर्थ के प्रारंभ से अन्त तक का यात्राक्रम कहता हूं। सुनें! मन-वाणी-काया से शुद्ध निर्दोष आत्मा जितेन्द्रिय मानव मानस आदि (अयोध्यास्थित मानसतीर्थ) में स्नान करके सम्यक् विधि का अनुष्ठान करे। उसे ही तीर्थफल लाभ होता है।।४२-४३।।

मानसान्येव तीर्थानि कथयस्वतपोधन!। येषुस्नातवतां नृणां विशुद्धिर्मनसोभवेत्॥४४॥

महर्षि व्यासदेव कहते हैं—हे तपोधन! जिन तीर्थों में स्नान द्वारा मनुष्य शुद्ध मन वाला हो जाता है, उन तीर्थों का माहात्म्य कहिये।।४४।।

अगस्त्य उवाच

श्रृणोतीर्थानिगदतोमानसानिममानघ!। येषु सम्यङ्नरः स्नात्वाप्रयातिपरमांगतिम्॥४५॥
सत्यतीर्थं क्षमातीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः। सर्वभूतदयातीर्थं तीर्थानां सत्यवादिता॥४६॥
ज्ञानतीर्थं तपस्तीर्थं कथितं तीर्थसप्तकम्। सर्वभूतदयातीर्थे विशुद्धिर्मनसो भवेत्॥४७॥
नतोयपूतदेहस्यस्नानमित्यभिधीयते। स स्नातो यस्य वै पुंसः सुविशुद्धंमनोगतम्।
भौमानामपि तीर्थानां पुण्यत्वे कारणं श्रृणु॥४८॥

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—हे निष्पाप! मानसादितीर्थ का वर्णन सुनें। इनमें सम्यक्तः स्नान करके मानवगण को परमागति का लाभ होता है। सत्यतीर्थ, क्षमातीर्थ, इन्द्रियनिग्रहतीर्थ, सर्वभूतदयातीर्थ, सत्यवादितातीर्थ, ज्ञानतीर्थ, तपतीर्थ कहे गये हैं। (ये ७ तीर्थ हैं)। सर्वभूतदयातीर्थ में मन शुद्ध होता है। केवल जल से शरीर शुद्ध होना स्नान नहीं है। इस स्नान से मनुष्य का मन शुद्ध होने से ही स्नान सम्पन्न हो जाता है। पृथिवी के तीर्थ कैसे शुद्ध हो गये, इसका कारण सुनें।।४५-४८।।

यथा शरीरस्योद्देशाः केचिन्मध्योत्तमाः स्मृताः।
तथा पृथिव्यामुद्देशाः केचित्पुण्यतमाः स्मृताः॥४९॥
तस्माद्भौभेषु तीर्थेषु मानसेषु च सम्वसेत्। उभयेषुचयःस्नाति स यातिपरमांगतिम्॥५०॥
तस्मात्त्वमपिविप्रेन्द्र विशुद्धेनान्तरात्माना। यात्रांकुरुप्रयत्नेन यात्रा वै नादितामया।
तं तु वक्ष्यामि विप्रेन्द्र! तीर्थयात्राविधिं क्रमात्॥५१॥

जायन्ते च जलेष्वेवम्रियन्तेचजलौकसः। न च गच्छन्तिते स्वर्गमशुद्धमनसोमलाः॥५२॥
विषयेष्वनिशं रागो मनसो मल उच्यते। तेष्वेव हि न सङ्गम्य नैर्मल्यं समुदाहृतम्॥५३॥

जैसे शरीर का कोई भाग उत्तम तथा कोई भाग मध्यम होता है, उसी प्रकार से पृथिवी का भी कोई-कोई भाग पुण्यतम माना गया है। अतः पृथिवी के तीर्थों में मानसादि तीर्थ स्थित रहते हैं और जो व्यक्ति उत्तम-मध्यम रूपी सभी तीर्थों में स्नान करता है, उसे परमगति प्राप्त होती है। हे विप्रेन्द्र! आप भी विशुद्ध मन के साथ प्रयत्नतः तीर्थयात्रा करिये। यह यात्राक्रम मैंने पहले नहीं कहा था। अब उसे क्रमरूप से कहता हूं। जलाशय निवासी जल में ही जन्म लेते तथा जल में ही मृत होते हैं, तथापि वे स्वर्ग नहीं जा पाते। उनका मन मलिन रहता है। निर्मल नहीं होता। सर्वदा विषयानुराग ही मनोमल है। जिसका विषयों के प्रति मनोयोग नहीं है, उसका ही मन निर्मल होता है।।४९-५३।।

चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानं न शुष्यति। शतशोऽपि जलैर्धौते सुराभाण्डमपावनम्॥५४॥
दानमिज्या तपः शौचं तीर्थसेवा श्रुतिस्तथा।
सर्वाण्येतानि तीर्थानि यदि भावेन निर्मलः॥५५॥
निगृहीतेन्द्रियग्रामो यत्रैव वसते नरः। तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्करं तथा॥५६॥
एतत्ते कथितं विप्र! मानसं तीर्थलक्षणम्।
स्नाते यस्मिन्क्रियाः सर्वाः सफलाः स्युः क्रियावताम्॥५७॥

जैसे जल में सुरापात्र को भले ही सौ बार धोया जाये, तथापि उसे शुद्ध नहीं कहा जाता, उसी प्रकार जब तक मन बहिर्विषयों से मुक्त नहीं होता और अन्तःप्रविष्ट नहीं हो जाता, तब तक यह दुष्ट मन शुद्ध नहीं हो सकता। दान-यज्ञ-तप-शौच-तीर्थसेवा तथा श्रवण से निर्मल मानव के ही लिये ये सब तीर्थ हैं। जिसकी इन्द्रिया वश में हैं, वह चाहे जहां रहता हो, वही उसके लिये नैमिष, कुरुक्षेत्र तथा पुष्कर क्षेत्र है। हे विप्र! मैंने इस प्रकार मानसतीर्थ लक्षण कह दिया। सर्वभूतदया तीर्थ में प्रवेशरूपी स्नान से ही क्रियावान लोगों की समस्त क्रिया सफलीभूत हो जाती है।।५४-५७।।

प्रातरुत्थाय मतिमान्सङ्गमे स्नानमाचरेत्। विभुं विष्णुहरिं दृष्ट्वा स्नायाद्वै ब्रह्मकुण्डके॥५८॥
चक्रतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा चक्रहरिं विभुम्। ततो धर्महरिंदृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥५९॥
एकादश्यामेकादश्यामियं यात्रा शुभावहा। प्रातरुत्थाय मतिमान्स्वर्गद्वारजलाप्लुतः॥६०॥
विधाय नित्यजं कर्म अयोध्यां च विलोकयेत्। सरयूं तु ततोदृष्ट्वापश्येन्मत्तगजंततः॥६१॥
बन्दीञ्च शीतलांञ्चैवबटुकञ्चविलोकयेत्। तदग्रसरसिस्नात्वामहाविद्यांविलोकयेत्॥६२॥
पिण्डारकं ततो दृष्ट्वा ततो भैरवदर्शनम्। अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यामेषा यात्रा फलप्रदा॥६३॥
अङ्गारकचतुर्थ्यां तु पूर्वोक्ता देवता अपि। विघ्नेशञ्च ततः पश्येत्सर्वकामार्थसिद्धये॥६४॥
प्रातरुत्थाय मतिमान्ब्रह्मकुण्डजले प्लुतः।
विष्णुंविष्णुहरिदृष्ट्वामनोवाक्कायशुद्धिमान् ॥६५॥

मतिमान मानव प्रातः उठकर घाघरा-सरयू संगम में स्नानोपरान्त विभु विष्णु हरि का दर्शन करके ब्रह्मकुण्ड में स्नान करें। तदनन्तर वह चक्रतीर्थ में स्नानोपरान्त प्रभुचक्रहरि तथा धर्महरि का दर्शन करके समस्त कलुष समूह से मुक्त हो जाये। प्रत्येक एकादशी के दिन यह यात्रा शुभ होती है। मतिमान मानव प्रभात काल में शय्यात्याग के अनन्तर स्वर्गद्वार में स्नान तथा नित्यकर्म सम्पन्न करके अयोध्या का दर्शन करके सरयू एवं मत्तगज स्थान का दर्शन करे, तत्पश्चात् बन्दी, शीतला तथा बटुक का अवलोकन करे। इन बटुक के समक्ष एक सरोवर है। इसमें स्नान के उपरान्त महाविद्या, पिण्डारक तथा भैरव का दर्शन करना चाहिये। अष्टमी तथा चतुर्दशी तिथि को यह यात्रा प्रशस्त होती है। अंगारक चतुर्थी के दिन पुनः पूर्वोक्त देवगण का दर्शन तथा तदनन्तर सर्वाभीष्टसिद्धि के लिये विश्वेश्वर का दर्शन करे। मतिमान् मानव प्रातः उठकर ब्रह्मकुण्ड के जल में स्नानोपरान्त विभु विष्णुहरि का दर्शन करके मन-वाणी तथा शरीर की शुद्धि सम्पन्न करें।।५८-६५।।

मन्त्रेश्वरं ततोदृष्ट्वा महाविद्यां विलोकयेत्।
अयोध्यां च ततो दृष्ट्वा सर्वकामार्थसिद्धये॥६६॥
स्वर्गद्वारेनरःस्नात्वासचैलोविजितेन्द्रियः। नानाविधानिपापानिबहुजन्मकृतानि च।
सचैलस्नानतो यान्ति तस्मात्सचैलमाचरेत्॥६७॥
एषा वै गदिता यात्रा सर्वपापहरा शुभ॥६८॥

इसके पश्चात् मन्त्रेश्वर तथा महाविद्या के दर्शनोपरान्त सर्वकामना सिद्धि हेतु अयोध्या जाकर स्वर्गद्वार में वस्त्रसहित स्नान करके वह अनेक जन्मार्जित पापों से मुक्त हो जाये। यही सर्वपापहारिणी शुभ अयोध्या-यात्रा है।।६६-६८।।

य एवं कुरुते यात्रा नित्यं शुभफलप्रदाम्। न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि॥६९॥
तस्मात्त्वमपि विप्रेन्द्र! अयोध्यां व्रज माचिरम्।
तत्र गत्वा क्रमेणैव यात्रां कुरु यतेन्द्रियय:॥७०॥
अयोध्या परमं स्थानं अयोध्या परमं महत्।
अयोध्यायाः समा काचित्पुरी नैव प्रदृश्यते॥७१॥
अयोध्या परमं स्थानं विष्णुचक्रे प्रतिष्ठितम्॥७२॥
इत्येतत्कथितं विप्र मया पृष्टं हि यत्त्वया। समाश्रय मुने! तां त्वमनुजानीहिमामतः॥७३॥

जो मानव इस प्रकार से शुभफलप्रदायात्रा नित्य करता है, उसे कोटिकल्पों में भी संसार में जन्म नहीं लेना पड़ता। हे विप्रेन्द्र! आप भी शीघ्र अयोध्या जाकर संयतेन्द्रिय स्थिति में इस क्रम से यात्रानुष्ठान करें। अयोध्या उत्तम स्थान है। यह सर्वतीर्थोत्तम है। अयोध्या के समान कहीं भी कोई पुरी नहीं है। परमस्थान अयोध्या विष्णुचक्र पर स्थित है। हे विप्र! मैंने जैसे देखा, उसी प्रकार से आपसे वर्णन किया है। हे मुनिवर! आप अभी से अयोध्या का आश्रय ग्रहण करिये। अब आप मुझे विदा दीजिये।।६९-७३।।

सूत उवाच

इत्येतदुक्त्वा विरते मुनौ कलशजन्मनि। उवाचमधुर वाक्यंव्यासःसतपसांनिधिः॥७४॥

सूत जी कहते हैं—कुंभज अगस्त्य यह कहकर मौन हो गये। तब तपोनिधि व्यास मधुर वाणी में यह कहने लगे।।७४।।

व्यास उवाच

धन्योऽस्म्यनृगृहीतोऽस्मि कृतकृत्योऽस्म्यहं मुने!।
सत्यं शौचं श्रुतं विप्रं सुशीलं च क्षमाऽऽर्जवम्।
सर्वञ्च निष्फलं तस्य अयोध्यां नाऽऽगतो यदि॥७५॥
यस्मिन्मयिप्रसन्नेनत्वयोक्तोधर्मनिर्णयः। इदानीमपिगच्छामिह्ययोध्यांनिर्मलांपुरीम्।
त्वमपि व्रज विप्रेन्द्र! स्वमाश्रमपदं निजम्।७६॥

ऋषि व्यास कहते हैं—हे मुनिवर! मैं स्वयं को धन्य तथा कृतार्थ अनुभव कर रहा हूं। मैंने समझ लिया कि जो मनुष्य अयोध्यागमन नहीं करता, उसका शौच, श्रवण, विप्रत्व, सुशीलत्व, क्षमा तथा आर्जव गुण विफल है। आपने यत्नतः अयोध्या का जो धर्म कहा है, मैं तदनुसार अभी निर्मलपुरी अयोध्या जा रहा हूं। हे द्विजोत्तम! अब आप भी अपने आश्रम जाईये।।७५-७६।।

सूत उवाच

इत्येवमुक्त्वाक्रमशोभायात्राविधिमनुत्तमम्। जगाम तपसांराशिरगस्त्यःकुम्भसम्भवः॥७७॥
स्वमाश्रमपदं धीरो विस्मयोत्फुल्ललोचनः। व्यासोऽपि महसां राशिर्जगाम विजितेद्रियः॥७८॥
अयोध्यामागतो विप्रःसर्वकामार्थसिद्धिये। आगत्यैतद्विधानेनकृत्वायात्रांयथाक्रमम्।७९॥
दृष्ट्वा महाश्चर्यकरं कारणं तीर्थमुत्तमम्। आनन्दतुन्दिलस्तत्रसम्यगाचम्य बुद्धिमान्।८०॥
ततो जगाम विप्रेन्द्रः स्वमाश्रमपदं मुनिः। व्यासेन कथितं मह्यं माहात्म्यं क्रमशस्तदा॥८१॥
मया श्रुत्वा च माहात्म्यंयात्रां कृत्वाविधानतः। कुरुक्षेत्रेसमागत्यभवदग्रेनिरूपितम्।८२॥
इदं माहात्म्यतुलंयः पठेत्प्रयतो नरः। श्रद्धया यच्च शृणुयात्सयाति परमां गतिम्।८३॥

सूत जी कहते हैं—तपोराशि कुंभज अगस्त्य ऋषि व्यास जी से इस प्रकार क्रमशः अत्युत्तम अयोध्या-यात्राविधि का वर्णन करके वहां से अपने आश्रम चले गये। उस समय विस्मय से व्यास जी के नेत्रद्वय उत्फुल्ल हो उठे। तेजपुंज इन्द्रिय विजयी द्विजप्रवर व्यास भी सर्वाभीष्ट प्राप्ति हेतु अयोध्या पहुंचे। बुद्धिमान व्यास ने अयोध्या में सम्यक्तः आचमन करके सविधि अयोध्या यात्रा किया। महाविस्मयकर तीर्थोत्तम अयोध्या दर्शन द्वारा वे प्रसन्न हो उठे। यात्रा सम्पन्न करने के अनन्तर महर्षि व्यास अपने आश्रम आये तथा उन्होंने क्रमशः इस अयोध्या माहात्म्य का वर्णन किया। मैंने भी उनसे यह प्रसंग सुनकर यथाविधि-अयोध्या यात्रा किया। अब कुरुक्षेत्र आकर आपसे वह कह रहा हूं। जो मानव इस अतुल अयोध्या माहात्म्य का पाठ करता है अथवा सश्रद्धभाव से इसे सुनता है, उसे परमगति प्राप्त होती है।।७७-८३।।

तस्मादेतत्प्रयत्नेन श्रोतव्यञ्च जनैः सदा। द्विजपूजा विष्णुपूजाविधातव्या प्रयत्नतः॥८४॥
दातव्यञ्च सुवर्णादि यथाशक्त्या द्विजन्मने। पुत्रार्थीलभतेपुत्रान्धर्मार्थीधर्ममाप्नुयात्।८५॥

अतिविपुलविधानैर्वर्णितं धर्म्यमाद्यं कलयति परभक्त्या क्षेत्रमाहात्म्यमेतत्।
य इह मनुजवर्यः श्रीसनाथः स सम्यग्व्रजति हरिनिवासं सर्वभोगांश्च भुक्त्वा।।८६।।
यः पाठकस्यापि कदाचिदेव ददाति वित्तं च यथाऽऽत्मशक्त्या
पात्राणि वस्त्राणि मनोहराणि रौप्यं सुवर्णञ्च गवीः स मुच्येत्।।८७।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डेऽयोध्या-
माहात्म्येऽगस्त्यव्याससम्वादेऽयोध्यायात्राविधिक्रम-
वर्णनं नाम दशमोऽध्यायः।।१०।।

।।समाप्तमिदमयोध्यामाहात्म्यम् ।।

।इति श्रीस्कान्दे महापुराणे द्वितीयं वैष्णवखण्डं सम्पूर्णम्।।२।।

इस कारण से मनुष्य यत्नतः इस अयोध्या माहात्म्य का श्रवण करें। तदनन्तर यत्नपूर्वक द्विज तथा विष्णुपूजा तथा यथाशक्ति ब्राह्मण को स्वर्णप्रदान करें। यह माहात्म्य सुनने से पुत्रार्थी को अनेक पुत्र तथा धर्मकामी को धर्मलाभ होता है। मैंने अत्यन्त विस्तार से अयोध्याधर्म का वर्णन किया। जो मानव भक्ति के साथ इस क्षेत्र माहात्म्य को सुनता है, वह वरेण्य मनुष्य समस्त सम्पत्तियों का अधिपति होता है। वह जीवन में नाना भोगों का उपभोग करके अन्त में हरिलोक गमन करता है। जो वाचक को यथाशक्ति धन, सम्पत्ति, मनोहर पात्र-वस्त्र-चांदी-स्वर्ण तथा गोदान करता है, उसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है।।८४-८७।।

।।दशम अध्याय समाप्त।।

।।अयोध्या माहात्म्य समाप्त।।

।वैष्णवखण्ड समाप्त।।